रावबहादुर

संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(माधुरी-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का अट्ठाईसवाँ पुष्प

रावबहादुर

[प्रहसन]

मूल-लेखक

मोलियर

फ्रांस का प्रसिद्ध प्रहसन-लेखक

अनुवादकर्ता

लक्ष्मीप्रसाद पांडेय

Indeed Molier you have never yet done any thing which has amused me more, and your piece is excellent ? "

Louis XIV King of France.

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद-पार्क

लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १।)] सं० १९८१ वि० [सादी ।।।)

प्रकाशक
श्रीछोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीकेसरीदास सेठ
नवलकिशोर-प्रेस
लखनऊ

वक्तव्य

फ्रांस के विख्यात नाट्यकार मोलियर का संक्षिप्त परिचय, जो इस पुस्तक के साथ ही मुद्रित है, देखने से पाठकों को ज्ञात होगा कि वह किस श्रेणी का नाट्यकार था। मुझे जहाँ तक स्मरण है, इस कवि के ग्रंथों का अनुवाद हिंदी में नहीं हुआ। * हाँ "ठोक-पीटकर वैद्यराज" अवश्य प्रकाशित हो गया है। हिंदी-भाषा-भाषियों ने उसे पसंद भी खूब किया है।

उसी कवि के "लवुज्वाँ जांतिल् ओम" का यह हिंदी-अनुवाद है। इस हिंदी-अनुवाद के संबंध में यह निवेदन करना है कि फ्रेंच समाज का स्थान इस देश के समाज को दिया गया है, इसलिये तदनुकूल आवश्यक परिवर्तन और काट-छाँट करनी पड़ी है। फ्रांस की और हमारी रीति-रवाज आदि में बहुत अंतर है। इससे यह स्पष्ट है कि हिंदी-अनुवाद में, इस संबंध में, मूल-पुस्तक से पार्थक्य रहेगा। मेरी समझ में, ऐसा किए बिना पुस्तक हिंदी-भाषा-भाषी जनता को रुचिकर अथवा उसके लिये उपयोगी हो भी न सकती। प्लॉट भी थोड़ा-थोड़ा बदल दिया गया है। मूल-लेखक ने प्रहसन के नायक मोशिए जुर्दें को "मामामोचि" की पदवी दिलाई और पदवी-दान के समय नक़ली तुर्क राजकुमार से तुर्की भाषा में बात-चीत कराई है; किंतु लेखक के तुर्की भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण उससे यह काम ठीक-ठीक नहीं हो सका। इसके लिये कुछ लोगों ने उसे दोष दिया है। परंतु अन्यान्य मर्मज्ञ फ्रेंच लेखकों ने मोलियर के

---

* मिस्टर जी० पी० श्रीवास्तव ने मोलियर के ग्रंथों की संपूर्ण सहायता से कई प्रहसन लिखे हैं।—संपादक

इस काम की प्रशंसा इसलिये की है कि उसके ऐसा कर देने ही से प्रहसन मज़ेदार हो गया है। हिंदी में नायक रावबहादुर गिरधारी-सिंह को राजा फ़तेहबूमसिंह बहादुर शाहमल हिंद की अर्थ-शून्य पदवी दी गई और कुँअर ज़बरसिंह के दीवान (भगुवा) से फ़ारसी में बात-चीत कराई गई है, जिसमें बड़े-बड़े लफ़्ज़ आए हैं ; और कुछ बातें तो उससे जान-बूझकर ऐसी कराई गई हैं, जिनका कुछ भी अर्थ नहीं होता। वे शब्द भी किसी भाषा के नहीं हैं। भगुवा आदि फ़ारसी भाषा न जानते थे। उनके संबंध में समझना चाहिए कि उन्होंने फ़ारसी के दस-पाँच वाक्य इधर-उधर से रट लिए और घुमा-फिराकर उन्हीं वाक्यों से काम लिया। दुभाषिए ने भाषा का मनमाना प्रयोग और अर्थ किया। उसने फ़ारसी भी खूब छाँटी, जिसका कि रावबहादुर पर ख़ासा असर पड़ा। नौकर-नौकरानियों की भाषा युक्त-प्रदेश की देहाती है। अन्यान्य पात्रों की भाषा बोल-चाल की है।

मूल-पुस्तक का अनुवाद श्रीयुत हरिश्चंद्र आनंदराव तालचेरकर बी० ए० (शायद अब बार-ऐट-ला) ने, कोई २० वर्ष पहले, किया था। हिंदी-अनुवाद का आधार आपकी वही कृति है। इसलिये आपको और उसके प्रकाशक—परलोकवासी श्रीयुत काशीनाथ रघुनाथ मित्र, 'मासिक मनोरंजन'-संपादक—को अनेक धन्यवाद हैं। प्रकाशक ने प्रसन्नता से अनुवाद की अनुमति देने की कृपा की थी, यद्यपि अब तो लोग विना सूचना दिए ही धड़ल्ले से दूसरों की पुस्तकों का अनुवाद कर लेते हैं, और उनसे उसके लिये यदि कुछ कहा जाय, तो उलटे बिगड़ने लगते हैं।

हिंदी-अनुवाद करने में मुझे कई सज्जनों ने कई प्रकार से सहायता दी है। किसी ने मूल्यवान् सम्मति दी है, किसी ने पात्रों की ग्रामीण भाषा में उचित फेर-फार करा दिया है, और किसी ने स्वयं पात्रों का नामकरण कर दिया है। एतदर्थ मैं उन सब-

को—नामोल्लेख किए बिना ही—हृदय से धन्यवाद देता हूँ। अध्यापक जीवनशंकरजी याज्ञिक एम्० ए०, एल्-एल्० बी० की कृपा का प्रत्यक्ष निदर्शन "मोलियर का परिचय" है। किंतु इसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद नहीं देना चाहता; क्योंकि मुझ पर उनकी जैसी कुछ कृपा-दृष्टि है, उसके लिहाज़ से उन्हें धन्यवाद देना धन्यवाद की दिल्लगी करना है।

"ठोक-पीटकर वैद्यराज" का औषधालय हिंदी-भाषा-भाषी जनता की कृपा से खूब तरक़्क़ी पर है। इससे उनकी फ़ीस भी दूनी हो गई है। देखना है, लोगों में अब रावबहादुर की कैसी इज़्ज़त होती है। स्वयं रावबहादुर तो मैदान में आते कुछ झिझकते हैं। यह गाँधी-युग का प्रताप है।

सागर,
दीपावली, १९७९ } अनुवादकर्ता

मोलियर का परिचय

कुछ महाकवि ऐसे हैं, जिनकी कीर्ति समस्त सभ्य संसार में छाई हुई है। उनकी कविता में ऐसे विशेष गुणों का चमत्कार होता है कि इतर-देशवासी और अन्य-भाषा-भाषी भी उनके भक्त हो जाते और उनकी कृति से लाभ तथा आनंद प्राप्त करते हैं। ऐसे महाकवि एक ही देश, जाति या काल के नहीं होते। वे समस्त संसार के आदरणीय होते और सर्वदा प्रसिद्ध रहते हैं। उनकी प्रतिभा और सहृदयता विश्वतोमुखी होती है। उसको देश या काल परिमित नहीं कर सकता। उनकी रचना अपनी मातृभाषा में ही होती है। देश-काल की झलक भी उसमें अवश्य रहती है। फिर भी उसमें कुछ ऐसे अलौकिक गुण होते हैं, जिनसे वह मनुष्य-मात्र के मन को मोहनेवाली बन जाती है। एक बार यदि उसके भावों को, उसके चरित्र-चित्रण को दूसरी भाषा द्वारा समझा दिया जाय, तो पाठक और श्रोता इस बात को भूल जाते हैं कि मूल-रचना का कवि किसी अन्य देश का है। मानव-हृदय पर इन महाकवियों का पूर्ण साम्राज्य होता है। इनकी रचना से सबको रस मिलता है। इन्हीं विरले महाकवियों में मोलियर की भी गणना है। जो श्रेष्ठ स्थान

भारतीय कवियों में कालिदास को और अँगरेज़ों में शेक्सपियर को प्राप्त है, वही मोलियर को अपने देश फ़्रांस के साहित्यिकों में प्राप्त है।

मोलियर का असल नाम 'झां बापतिस्त पुकें' था; परंतु उसने न-जाने किस कारण से अपने नाटकों में 'मोलियर' नाम रख लिया, और अब तक वह इसी नाम से प्रसिद्ध है। उसका जन्म सन् १६२२ ई० में, पेरिस-नगर में, हुआ था। उसका पिता एक मध्यम श्रेणी का व्यवसायी था। धीरे-धीरे फ़्रांस के राजघराने तक उसकी पहुँच हो गई, और फिर वह शाही तोशेख़ाने का प्रधान निरीक्षक हो गया। पिता ने मोलियर को उत्तम शिक्षा दिलाने का निश्चय किया, और एतदर्थ उसे क्लेमौंट के कॉलेज में भर्ती कराया। मोलियर के कॉलेज के सहपाठी उच्च घराने के नवयुवक थे। उनकी जान-पहचान से आगे चलकर उसे थोड़ा-बहुत लाभ हुआ। प्राचीन भाषाओं का, विशेषकर ग्रीक और लैटिन का, अच्छा ज्ञान प्राप्त कर उसने गैसेंडी-नामक तत्कालीन प्रसिद्ध दार्शनिक से दर्शन-शास्त्र का अच्छा अध्ययन किया। धर्म-संबंधी विचारों में मोलियर लकीर का फ़क़ीर न था। इसका कारण गैसेंडी की शिक्षा ही थी। उसने अपने नाटकों में प्रायः पादरियों और पाखंडियों का उपहास किया है, और इसीलिये लोग उसको श्रद्धा-हीन धर्म-द्रोही समझ बैठे थे। पादरियों ने तो उसको अपना कट्टर शत्रु मानकर

उसके साथ घृणित और निष्ठुर व्यवहार किया था। बाल की खाल निकालने की आदत होने के कारण शास्त्रियों के वाद-विवाद का उसने ख़ूब मज़ाक़ उड़ाया। अतः उन धर्म के ठेकेदारों की आँखों में उसका खटकना कोई आश्चर्य-जनक नहीं। पिता की इच्छा थी कि मोलियर पढ़-लिखकर या तो घर के व्यवसाय को सँभाले और उसकी उन्नति करे, या वकालत करे। परंतु पुत्र का झुकाव दूसरी ही ओर था। बाल्यावस्था में नाटक देखकर उसका मन नाट्यकार बनने के लिये लालायित हो चुका था। नाटक लिखकर उनका अभिनय करना और स्वयं पात्र बनकर, इस कला की उन्नति करते हुए, यश, प्रसिद्धि और धन प्राप्त करना ही उसने अपने जीवन का उद्देश बना लिया।

शिक्षा समाप्त करने के थोड़े ही दिनों बाद उसकी माता का देहांत हो गया। मोलियर को माता की संपत्ति का हिस्सा मिला। मोलियर ने उसी संपत्ति के सहारे नाट्य-जगत् में अवतीर्ण होने का दृढ़ निश्चय कर लिया; वकालत या पैतृक व्यवसाय का ख़याल बिलकुल भुला दिया, और नाट्य-शाला खोल दी। शायद उसने इसके लिये अपने पिता की अप्रसन्नता की भी पर्वा नहीं की। यदि पिता के कहने में आकर मोलियर एक अच्छा वकील या धनी व्यवसायी बन जाता, तो इसमें संदेह नहीं कि साहित्य-संसार की बहुत बड़ी क्षति होती।

सौभाग्यवश उसकी माता ने उसे पहले ही अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने की अनुमति दे दी थी। नाटकों का अभिनय करने के लिये टेनिस खेलने का एक कोर्ट किराए पर लिया गया; और इस तरह क्षुद्र सामग्री से कार्यारंभ हुआ। नाटक-मंडली में जिन लोगों ने योग दिया, उनमें मुख्यतः बेझा-ख़ानदान के स्त्री-पुरुष ही थे। इस कुटुंब से मोलियर का बड़ा गहरा संबंध हो गया, और वह यावज्जीवन उत्तरोत्तर घनिष्ठ होता गया। पेरिस में मंडली ने अभिनय किए; परंतु आर्थिक दृष्टि से कुछ सफलता न हुई। आमदनी ख़र्च से बहुत कम होती थी। परिणाम यह हुआ कि मोलियर को ऋण लेना पड़ा। एक बार जब ऋण का सहारा लिया, तो फिर उसका बोझ रात-दिन बढ़ने लगा। यहाँ तक कि कई मामले अदालत तक पहुँचे। एक मोमबत्ती बेचनेवाले ने तो बहुत ही छोटी रक़म की डिगरी भी हासिल कर ली। इससे प्रकट है कि मोलियर की आर्थिक स्थिति कैसी हीन हो गई थी। ऋण-दाताओं से छुटकारे का कोई उपाय न निकला, तो अंत को दो बार मोलियर को जेल की भी हवा खानी पड़ी। इस प्रकार सब तरह से आपत्तियों ने उसे घेर लिया। यदि मोलियर को नाट्य-कला से कुछ कम प्रेम होता, तो संभव था कि वह कोई दूसरा व्यवसाय करने लगता। परंतु वीर हृदय ने ऐसा नहीं किया। नाट्य-रचना और अभिनय-कला

को वह साधारण व्यवसाय की दृष्टि से नहीं देखता था। उसको इनसे हार्दिक प्रीति थी। यही कारण था कि विपत्ति से घिरे रहने पर भी उसने मन में निश्चय रक्खा कि इसी कला द्वारा वह अपनी अभिलाषा पूरी कर सकेगा। उसे अपनी प्रच्छन्न प्रतिभा पर पूरा विश्वास था। किसी प्रकार ऋण-दाताओं से छुटकारा पाकर और अपनी पूँजी गँवाकर उसको यह निश्चय हो गया कि पेरिस अभी उसका आदर करने के लिये तैयार नहीं है। मोलियर की मंडली ने निश्चय किया कि राजधानी छोड़कर प्रांत में दौरा किया जाय, और नाटकों का अभिनय कर प्रांत-वासियों को रिझाकर आर्थिक दशा सुधारी जाय। सन् १६४६ ई० में मंडली का पर्यटन आरंभ हुआ। जिस कला-कौशल का पेरिस में उचित आदर नहीं हुआ, उसने प्रांत में अच्छी सफलता प्राप्त की। भ्रमण से मंडली की ख्याति भी हुई, और अर्थ-लाभ भी। परंतु उससे बढ़कर लाभ साहित्य-संसार को हुआ। मोलियर को इस भ्रमण से मानव-हृदय के रहस्यों का पूर्ण अनुभव हुआ, और वह एक नाट्यकार के लिये अमूल्य धन था। उसे मालूम हुआ कि यह अनुभव ही मुख्य सामग्री है, जिसके विना सफल नाट्यकार बनना नितांत असंभव है। अब मोलियर ने नाटक-रचना का प्रारंभ किया, और निश्चय किया कि नाटक साहित्य की दृष्टि से चाहे जैसे हों, परंतु हों सब प्रकार से अभिनय

के योग्य। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि नाटकों की लेखन-शैली और कविता आदि की ओर उसका ध्यान ही न था। बात यह है कि मोलियर चाहता था, नाटक अभिनय में सफल हों, चाहे उनके पढ़ने में पाठकों को विशेष आनंद प्राप्त हो चाहे न हो। यह शिक्षा और अनुभव भी बड़े काम के थे। बड़े-बड़े कवियों ने जो नाटक लिखे हैं, उनमें बहुत-से ऐसे हैं, जिनका अभिनय सफलता-पूर्वक कभी नहीं हो सका, यद्यपि पढ़ने में वे अच्छे हैं। मोलियर अपनी रचना को इस दोष से मुक्त रखने के लिये बहुत सावधान रहना चाहता था। इस समय जो नाटक उसने लिखे, वे एक अभिनेता की लेखनी के अवश्य मालूम होते हैं, परंतु उनमें कहीं-कहीं मोलियर की उस प्रतिभा की स्पष्ट झलक विद्यमान है, जिसके पूर्ण विकास ने फ़्रांस ही नहीं, वरन् समस्त यूरोप को जगमगा दिया। इस काल के लिखे सब नाटक उपलब्ध नहीं हैं। परंतु जो हैं, वे मोलियर की अर्ध-विकसित कला के साक्षी हैं। इस प्रकार मोलियर संसार और मानव-प्रकृति का अनुभव प्राप्त करते हुए नाट्य-कला सीखकर अपनी मंडली सहित, सन् १६५८ ई० में, पेरिस लौट आया। अब दिन फिर गए थे। पेरिस में मोलियर ने अपना कौशल दिखलाया। उसने स्व-रचित नाटकों के मुख्य पात्रों का अभिनय ऐसी सफलता से कर दिखलाया कि लोग देखकर दंग

रह गए। सर्वत्र उसकी प्रशंसा होने लगी। यहाँ तक कि उसकी नाट्य-कला-निपुणता की बात राज-घराने तक पहुँची। उसे बादशाह लुई को अपनी कला-निपुणता दिखलाने का अवसर प्राप्त हुआ। मोलियर की नाट्य-कला-चातुरी देखकर लुई प्रसन्न हो गया, और प्रसाद-स्वरूप मोलियर को अपना जीवन अंत समय तक सुख-पूर्वक बिताने के लिये राजाश्रय मिल गया। राजा की कृपा हुई, तो प्रजा में सम्मान होना ही चाहिए। मंडली बहुत बड़ी हो गई, और उसका नाम भी बदल दिया गया। इस प्रकार मोलियर का सितारा चमक उठा। मोलियर को सफलता तो हुई, पर सफलता के साथ-साथ उसका कार्य-भार बहुत बढ़ गया। अपनी नाटक-मंडली का प्रमुख वही था। इसके अतिरिक्त मंडली का प्रधान पात्र भी था। इन ज़िम्मेदारियों को निबाहते हुए भी उसको नाटक लिखने का समय मिल जाता था। उसकी शक्ति और कार्य-कुशलता ने यह सब भार उठा लिया। अगले दस वर्षों में उसने २८ नाटक लिखे। ये नाटक एक-से-एक बढ़-चढ़कर हैं, और इन्हीं के कारण आज वह संसार के सर्वोच्च नाट्यकारों में गिना जाता है। मोलियर के अत्यधिक परिश्रम का फल यह हुआ कि बुद्धि और शरीर, दोनों ही, कार्य-भार से दबकर, धीरे-धीरे जवाब देने लगे। शरीर में रोग ने घर कर लिया। एक दिन, फ़रवरी, सन् १६७३ ई० को,

मंच पर अभिनय करते-करते अचानक वह बेहोश हो गया, और फिर शरीर का अंत करके ही वह रोग शांत हुआ।

मोलियर के जीवन के संबंध की घटनाओं का कुछ ठीक पता नहीं चलता। उसके जीवन की बहुत थोड़ी बातें निर्विवाद हैं। उसके संबंध में बहुत-सी बे सिर-पैर की बातें मशहूर हैं, जिन्हें जीवनी-लेखकों ने अपनी कल्पना से गढ़ लिया है। सच्ची बात तो यह है कि मोलियर की विस्तृत और प्रामाणिक जीवनी लिखने के लिये बहुत ही थोड़ी सामग्री उपलब्ध है। उसके जीवन पर जिन बातों का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था, उनका रंग उसकी रचना पर भी है। उन्हीं का यहाँ संक्षेप से वर्णन किया जाता है।

पहली बात उसके ब्याह की है। बेझा-घराने से उसका बड़ा घनिष्ठ संबंध था, यह ऊपर कहा ही जा चुका है। इस घर के भाई-बहन नाटक-मंडली के प्रधान पात्रों में से थे। बड़ी बहन से मोलियर का अत्यंत निकट-संबंध था। बहुत लोगों का अनुमान है कि उनमें परस्पर स्त्री-पुरुष का संबंध था। यह स्त्री सदाचारिणी नहीं थी। अविवाहित अवस्था में ही वह एक लड़की की मा हो चुकी थी। मोलियर के शत्रु बहुत थे। संभव है, यह लांछन उन शत्रुओं की शत्रुता का फल हो। कई वर्ष बाद मोलियर ने उसी की छोटी बहन से, जो मंडली में सम्मिलित थी, ब्याह कर लिया। वह सुंदरी और स्वभाव की चंचल थी। मोलियर को उस

पर कभी विश्वास नहीं हुआ। फिर आपस में कैसे बनती? इसी कारण मोलियर का गार्हस्थ-जीवन सुखमय न था। स्त्री-प्रकृति प्रतिभा-संपन्न पति को अच्छी तरह पहचानने में प्रायः अशक्त रही है। जो सभ्य-समाज का भूषण है, वही निज पत्नी द्वारा अनादृत हो, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। कई कवि ऐसे हुए हैं, जिनकी गृहिणियाँ कलह और संकट की साक्षात् मूर्ति रही हैं। मोलियर के जीवन पर उसकी इस गृहिणी का जो प्रभाव पड़ा, उसकी छाया उसके एक नाटक में विशेष रूप से देख पड़ती है। इसी कारण स्त्रियों के प्रति मोलियर के हृदय में आदर का भाव न था। उनके स्वाभाविक दोषों का उसे स्वयं अनुभव हुआ था, इसीलिये उसके नाटकों के स्त्री-पात्र स्त्री-चरित्र के स्पष्ट द्योतक हैं। उच्च आदर्श की स्त्रियों का चरित्र-चित्रण मोलियर ने नहीं किया। उसको तो सारी स्त्री-जाति दोष-पूर्ण दिखाई देती थी। स्त्री-जाति के प्रति उसका कटु-भाव जहाँ-तहाँ नाटकों में दिखाई देता है।

दूसरी उल्लेखनीय बात राजा लुई से मोलियर का संबंध है। लुई मोलियर के नाट्य-कौशल पर मुग्ध हो चुका था। मोलियर के पिता का प्रवेश राजदरबार में पहले ही से था। इसलिये मोलियर को राजा का कृपा-पात्र बनने में कुछ विलंब न हुआ। राजाश्रय से मोलियर को लाभ के साथ हानि भी हुई। विवश होकर उसे ऐसे प्रहसन

आदि लिखने पड़ते थे, जिनसे लुई प्रसन्न हो, और जो उसकी रुचि के अनुकूल हों। इस प्रकार लुई की इच्छा-पूर्ति करने के लिये मोलियर का बहु-मूल्य समय ऐसे कामों में नष्ट होता था, जिनका साहित्यिक दृष्टि से विशेष मूल्य नहीं। कभी-कभी तो आदेश मिलने पर ऐसे प्रहसन बहुत ही थोड़े समय में लिखने पड़ते थे। परंतु वह प्रतिभा और सूझ, जो कविता में चमत्कार की सृष्टि करती है, किसी की आज्ञा के वशवर्ती नहीं हो सकती। कवि को अनोखी बात तभी सूझती है, जब वह कवित्व-रस में मस्त हो जाता है। इसी समय कवि की रचना उच्च कोटि की होती है। किसी की आज्ञा तथा संपत्ति-प्राप्ति के लोभ आदि से प्रेरित होकर कोई कवि सब समय अपनी कवित्व-पूर्ण प्रतिभा को प्रकट नहीं कर सकता। कल्पना-शक्ति ईश्वर-प्रेरित होती है। उसका कोई नियम नहीं। अपने-आप उसका उदय होता है। उसी के प्रभाव से कवि अनूठी और अलौकिक कविता रच डालता है। उसका लय होने पर वही कवि निस्तेज होता है, और उसकी सूझ और कल्पना पर परदा-सा पड़ जाता है। इसीलिये मोलियर ने अपना जो समय लुई की आज्ञा के अनुसार रचना करने में लगाया, वह प्रायः व्यर्थ ही गया। निकम्मे प्रहसन लिखाकर लुई ने मोलियर की प्रतिभा का अपमान ही नहीं किया, बल्कि उत्तम नाटकों की

रचना में बाधा भी डाली। राजाश्रय से मोलियर को एक बड़ा लाभ भी हुआ। अपने नाटकों में उसने जिन लोगों की हँसी उड़ाई है, वे सब उसके शत्रु हो गए थे। पादरियों और डॉक्टरों को तो मोलियर ने खूब ही बनाया है। उनका अप्रसन्न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। मोलियर की उन्नति और उस पर लुई की असीम कृपा के कारण भी बहुत लोग उससे जलने लगे थे। उनकी आँखों में वह काँटे के समान खटकता था। इस ईर्ष्या, द्वेष और शत्रुता से रक्षा करने में लुई के आश्रय ने बड़ी सहायता की। फ्रांस की सामाजिक दशा उन दिनों ऐसी थी कि राजानुग्रह के विना मोलियर को सहायता प्राप्त करना और अपने विरोधियों से निर्भीक रहना असंभव हो गया था। एक ओर यदि लुई के संबंध से मोलियर की स्वच्छंदता में हस्तक्षेप होता था, तो दूसरी ओर राजाश्रय से उसकी रक्षा भी होती थी। राजा के मनोविनोदार्थ जो कार्य उसने किया, उसकी अब उचित अवगणना (?) होती है। *

---

* मोलियर को अपने जीवन-भर शांति कभी नहीं मिली। घरेलू झगड़ों तथा शत्रुओं के द्वेष ने उसे कभी चैन से नहीं रहने दिया। नाम और धन मिले, तो उनके भी उपभोग का अवसर नहीं मिला। काम के झंझट में लगे हुए ही उसने अपना शरीर छोड़ा।—लेखक

मोलियर के नाटक दो श्रेणियों में विभक्त किए जा सकते हैं। एक तो हैं हँसी-दिल्लगी के प्रहसन, जिनमें सामाजिक कुरीतियों का खूब मज़ाक़ उड़ाया गया है। उनके पढ़ने और अभिनय देखने में लोगों को खूब हँसी आती और मनो-रंजन होता है। उनमें कहीं-कहीं आजकल की सभ्यता को खटकनेवाली जो बातें आ जाती हैं, वे उस समय असभ्य या ग्रामीण नहीं समझी जाती थीं। इन प्रहसनों से मनो-रंजन के साथ शिक्षा भी प्राप्त होती है। मोलियर बहुत-सी बातों की हँसी इसीलिये उड़ाता है कि लोगों को उनसे घृणा हो, उचित-अनुचित का विवेक हो, और समाज जिन नासमझी की बातों को गवारा करता है, उनको लोग निंदित समझकर छोड़ दें। कुछ लोगों की धारणा है कि कवि का काम केवल शिक्षा देना है, किसी बात का प्रचार करना नहीं। कवि का कोई विशेष उद्देश्य कविता में नहीं प्रकट होना चाहिए। मानव-प्रकृति का यथार्थ वर्णन करना ही उसके लिये काफ़ी है। यदि वह कविता को सुधार तथा प्रचार का साधन बनाता है, तो भूल करता है। किंतु मोलियर का विचार ऐसा नहीं था। वह अपने नाटक और अभिनय को समाज-सुधार का एक साधन मानता था। वह हमारी कमज़ोरियों का वर्णन इस प्रकार करता है कि हमको अपने पर हँसी आती है, और चेता-वनी पाकर हम अपना सुधार करने में तत्पर हो जाते

हैं। यद्यपि सुधार की प्रेरणा इन प्रहसनों में अच्छी तरह दिखाई देती है, तो भी ये हास्य-रस से परिपूर्ण हैं। दूसरी श्रेणी में मोलियर के गंभीर नाटकों की गणना है। ये नाट्य-कार की कल्पना और कवित्व-शक्ति का पूर्ण परिचय देते हैं। इन्हीं नाटकों के द्वारा मोलियर को संसार के साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त हुआ है। इन नाटकों में मानव-लीलाओं का वर्णन हास्य-दृष्टि से किया गया है। हास्य-रस-प्रधान होने पर भी इनमें गंभीरता का अभाव नहीं है। बल्कि यह कहना चाहिए कि कवि ने गूढ़ और गंभीर बातों को हास्य-रस की पुट देकर नाटक-रूप में प्रकट किया है। सरसरी दृष्टि से तो ये आनंद और प्रमोद की सामग्री मालूम होते हैं, परंतु ध्यान देकर देखने पर कृति के गंभीर भाव भी गौण-रूप से दिखाई देते हैं। कहीं-कहीं भाव-गंभीरता इतनी बढ़ जाती है कि देखते-देखते हास्य-रस करुण-रस में बदल जाता है। हँसते-हँसते एकदम ऐसा भाव-परिवर्तन होता है कि दर्शक का हृदय द्रवीभूत होकर रोने लग जाता है। मानव-हृदय के भावों पर इतना अधि-कार प्राप्त करना सहज नहीं है। इन नाटकों की दूसरी विशेषता यह है कि इनमें मानव-चरित्र का बड़ा सच्चा और हृदय-ग्राही वर्णन मिलता है। मोलियर ने उपहास और आक्षेप के द्वारा समाज का जैसा चित्र खींचा है, वैसा और कहीं देखने को नहीं मिलता। उसकी नोक-झोंक से

किसी श्रेणी के लोग नहीं बचते। उसने सबका कच्चा चिट्ठा लिख दिया है। व्यंग्य और उपहास का शिकार प्रायः वे ही लोग बनाए गए हैं, जो अनीति, अन्याय, मूर्खता और लालच को अपनाए हुए हैं, और फिर भी उन्हें अपने दोष नहीं दिखाई देते। विवाह, शिक्षा, धर्म, बनावट, भ्रष्ट-चरित्रता आदि सभी बुराइयों को उसने आड़े हाथों लिया है। दार्शनिक, डॉक्टर, वकील, पादरी, छैल-चिकनिया बाबू लोग और विलास-प्रिय स्त्री-पुरुष, कोई भी उसके हास्योत्पादक व्यंग्य से नहीं बचा। बनावटी बातों से तो मोलियर को चिढ़ थी। दूसरों की मूर्खता पर हमको वह खूब हँसाता है; उल्लास और प्रमोद को बरसाता है; साथ ही समाज-सुधार का उद्देश्य सदा अपने सामने रखता है। अपूर्वता चाहे मोलियर में उच्च कक्षा की न हो, परंतु समझदारी बड़ी गहरी थी। मानो वह मूर्तिमान् विवेक ही था।

उसके नाटकों में कुछ दोष स्पष्ट हैं। नाटकों के कथा-भाग में शिथिलता आ गई है। इसका कारण यह भी है कि मोलियर नाटक को खेलने योग्य बनाने पर विशेष ध्यान देता था। बहुत स्थानों पर असंभव और प्रकृति-विरुद्ध बातों का भी समावेश पाया जाता है। परंतु चरित्र-चित्रण में उसकी बराबरी करनेवाले बहुत कम नाट्यकार हैं। उपपात्रों को भी वह सजीव, सच्चे स्त्री-पुरुष बना देता है।

उसके थोड़े-से शब्दों में ही पात्रों में वह सजीवता आ जाती है कि पढ़नेवाले को आश्चर्य होता है।

अभिनय करने में भी मोलियर बड़ा निपुण था। करुण-रस-प्रधान पात्रों में उसको विशेष सफलता नहीं हुई। हास्योत्पादक पात्र में वह खिल उठता था। *

"ठोंक-पीटकर वैद्यराज" से हिंदी के पाठक पहले ही से परिचत हैं। मोलियर के इस दूसरे प्रहसन रावबहादुर से भी उस महाकवि की अलौकिक प्रतिभा का कुछ परिचय मिलेगा। इन दोनों प्रहसनों द्वारा हिंदी-साहित्य की श्री-वृद्धि करने के कारण पंडित लल्लीप्रसादजी पांडेय धन्यवाद के पात्र हैं।

हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी } जीवनशंकर याज्ञिक

* मोलियर का संक्षिप्त परिचय यहीं समाप्त किया जाता है। यदि स्थानाभाव न होता, तो शेक्सपियर से उसकी तुलना करने का प्रयत्न किया जाता; क्योंकि दोनों नाट्यकारों में बहुत-सी बातें ऐसी मिलती-जुलती हैं, जो एक दूसरे का स्मरण करा देती हैं।—लेखक

मोलियर

रावबहादुर
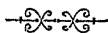
पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—रावबहादुर की बैठक

[टेबिल, कुर्सी, आरामकुर्सी और क़ालीन वग़ैरह अँगरेज़ी ढंग के सामान से बैठक सजी हुई है। एक कुर्सी पर रावबहादुर के परम मित्र आशाराम हाथ-पैर फैलाए आराम से ख़र्राटे ले रहे हैं। रूमाल से टेबिल वग़ैरह की धूल पोंछता हुआ पलटू आता है]

पलटू—(स्वगत) द्याखौ सार रावबहादुर ह्वै गा ! कहाँ का रावबहादुर औ कहाँ का को ! हमका तौ तिन-कउ फरकु नहीं देखात। जैस कोइला अस करिया मुँह तबै रहै, तैस अबहूँ है। उतनै लाँबौ है। तब का बैकुंठु मिलि गा ? द्याखौ, अब मालिक कउनि रचना रचेनि हैं। याकौ दिन खाली नाहीं जात है। रोजु-रोजु कुछु-न-कुछु ह्वावै करत है। कबहूँ नाचु है, कबहूँ गौनई है, कबहूँ दावति है औ कबहूँ लावनीबाजी ह्वावा करति है ! राम-राम, वै जानैं का ढ्वाँग मचाय राखिन हैं ! हमार तौ जिउ

इन बातन ते ऊबि गा है। (ज़रा ठहरकर) मुदा गदहानंदन! तुमका का परी है? तुम्हरे बाप का का लागत है? मालिक चहै जउन करैं, तुम्हार पेटु काहे का पिरात है? (आरामकुर्सी की गर्द झाड़कर टेबिल पोंछने जाता है, पीछे कुर्सी पर छड़ी और रूमाल देखकर चौंकता है) यहु कउन सार आय परा है हियाँ! जानौ पायँ फैलाए अपने बापै के घर माँ परे हैं। (सोच-विचारकर) अच्छा, अब यहिका उठावा चही। (आशाराम के पास जाकर) ओ सोवइया, उठौ हो, उठौ। (इसी समय भीतर से 'पलटू, पलटू' की पुकार होती है, और वह फुर्ती से उसी ओर जाता है)

आशाराम—(नींद टूटते ही घबराकर चारों ओर देखता और आँखें मलता है) मैं कल रात को घर गया कि नहीं? यह तो मेरी कोठरी नहीं है, और न मैं अपने पलँग पर ही हूँ! मैं स्वयं आशाराम ही हूँ, या कोई और? (खोपड़ी टटोलता है) नहीं, और कोई नहीं, मैं ही हूँ! पर बचा घबराते क्यों हो? अच्छी तरह सोच तो लो कि तुम यहाँ कहाँ हो। (कुछ स्मरण-सा करके) अच्छा, अब याद आया। कल रात को मैं क्लब से अपने जिगरी दोस्त डॉक्टर रामप्रसाद के साथ शराब के नशे में गया—हाँ, यही ठीक है। याद आ गई। उन्हीं ने—उन्हींने इन नए रावबहादुर से मेरी जान-पहचान करा दी, और इन नए मित्र के प्रेम का अभिनंदन करने के लिये जब मैंने दर्ज़न-डेढ़ दर्ज़न

बोतलें खाली कर दीं, तब मेरी इन टाँगों ने घर जाना किसी तरह स्वीकार नहीं किया। (हँसकर) बस, यही तो खुलासा हाल है। तब मैं यहीं पर निद्रा की गोद में चित हो गया। परंतु, यदि वह नए रावबहादुर साहब मुझे इस हालत में देखेंगे, तो बड़ी फ़ज़ीहत होगी। हाँ, भैया आशाराम, अब तुम यहाँ से खिसको। (जल्दी-जल्दी सिर से साफ़ा लपेटकर छड़ी हिलाता और मूछों पर ताव देता हुआ जाने लगता है ; परंतु फिर तुरंत ही लौटता है) अरे ग़ज़ब हो गया! वह देखो, नथुवा मज़कूरी चाँदमल मारवाड़ी के साथ खड़ा है। यहाँ से निकलकर जाना बहुत ही बुरा है। मुझे यहाँ से इस समय हिलना भी नहीं चाहिए। परंतु यहाँ पर यदि कोई मुझसे कुछ पूछ बैठेगा, तो मैं उसे क्या उत्तर दूँगा? मैं तो उस रावबहादुर का नाम भी भूल गया! मेरा भाग्य ही फूट गया है! देखो, मैं कितना भोला आदमी हूँ—अजी आदमी क्यों, देवता हूँ—बिलकुल देवता! परंतु मेरे सभी दुश्मन हैं। सो कुछ बेजा नहीं ; क्योंकि भले आदमियों ही के शत्रु होते हैं, और वह भी अधिक संख्या में। देखिए न, मेरा धोबी, मेरा नाई, दर्ज़ी, मोदी, बजाज़, ग्वाला और सेठ—सभी सत्तू बाँधकर मेरे पीछे पड़े हैं। और, कचहरी के मज़कूरियों को तो देखो। इन्होंने तो मेरी नाक में दम कर रक्खा है। जहाँ देखो, वहीं ये यम के-से दूत इनाम माँगने को खड़े

हैं। इन्हें और हमारी सरकार को गोया और कुछ काम है ही नहीं। भई, मैं तो हैरान हो गया इनके मारे। इसमें संदेह नहीं कि मेरे पास रुपया-पैसा नहीं है। तो क्या यह पाप है? धन-दौलत न हो, तो क्या मैं आत्म-हत्या-जैसा महापाप कर बैठूँ? हाँ, एक दोष मुझमें ज़रूर है—मुझे सुध बिलकुल नहीं रहती। इसी से जो मैं किसी से कुछ क़र्ज़ लेता हूँ, तो बिलकुल भूल जाता हूँ! सोचो तो भला, इसमें मेरा क्या अपराध है? इस आफ़त से बचने के लिये ही तो मैं एक नोट-बुक हमेशा लिए रहता हूँ, और उसमें याद रखने लायक़ बातें लिख लिया करता हूँ। यों तो मेरा चाचा लखपती है, पर है पल्ले सिरे का मक्खीचूस! जब से उसने मुझे घर से बाहर निकाल दिया, तब से बड़ी आफ़त है। ख़ैर, कुछ पर्वा नहीं। उसके बाद तो बंदा ही (मूछों पर ताव देता है) उसकी सारी दौलत का मालिक होगा। पर देखो तो, मैंने जादू कराया, मन्नतें मानीं, अनुष्ठान कराए, मुहर्रम की ज़ियारत तक की, तो भी वह बुड्ढा नहीं मरता! अरे यह देखो, सामने से कौन आ रहा है? बच्चा आशाराम, सँभल जा। यह तो कोई मुचंड गँवार-सा लगता है। (दौलत आता है। उसकी तरफ़ देखता हुआ चौंककर) भाई, राम-राम, जोहार; कौन हो जी तुम?

दौलत—मैं अहौं, मैं! वो रावबहादुर है न, ते ही का भतीज। मोर नाँव दौलत भगत।

आशाराम—रावबहादुर ?

दौलत—(बड़े गर्व से) हाँ-हाँ, रावबहादुर कै लोगाई, हमारि बुआ। बुआ 'दमड़ी' के साथ हमार बिआहु ठहरावा इहन, तिहिते हम आपन देस छाँड़ि के हियाँ आए हन।

आशाराम—क्या कहा ? नहीं, यह बात मुझे अपनी नोट-बुक में लिख ही लेनी चाहिए। नहीं तो मेरी यह भूलने की आदत मुझे ज़रूर दगा दे जायगी। (नोट-बुक में लिखता है) दौलत—रावबहादुर का भतीजा—दमड़ी के साथ इसका ब्याह होनेवाला है।

दौलत—(चकित होकर। स्वगत) यहु सार का लिखतु है ? (प्रकट) काहे सरकार, का सादिउ-बियाह के ऊपर टिक्कस लगावै का ब्यौंत करि हौ का ?

आशाराम—अच्छा दौलत, इस घर के मालिक का क्या नाम है ?

दौलत—काहे रे, जब घर के मालिक का पहिचनतै न रहे, तब हियाँ काहे का आवा ?

आशाराम—(बड़ी सभ्यता से) सच बतलाऊँ दौलत, उर्फ़ दौलतसिंह ? भई, मैं हूँ बड़ा भुलक्कड़राय। जो तू पूछे कि मिस्टर आशाराम—मेरा नाम आशाराम है—तो मैं घड़ी-दो घड़ी अपने नाम ही को भूला रहूँगा ! (हँसता है)

दौलत—(उत्सुकता से) हमरे फूफा का नावँ रावबहादुर गिरधारिया है।

आशाराम—वाह-वाह ! रावबहादुर गिरधरिया, आइए मेरी नोट-बुक में । (लिखता है) कल के निमंत्रण देनेवाले नए मित्र आप ही हैं न ?

दौलत—(अचरज के साथ) द्याखव सार बड़ा भुलक्कड़ है ! (इतने में दमड़ी हाथ में झाड़ू लिए आती है, और आशाराम को देखते ही नखरे के साथ लौट जाती है । उसे अकेली जाते देखकर) द्याखव, कइसे आपै-ते-आप सिकार मिलि गा । अब या कहाँ जाई !

[जाता है

आशाराम—अच्छा हुआ, आफ़त टली, झगड़ा मिटा । (खिड़की की राह से रास्ते की तरफ़ देखकर) लो, नथुवा मज़कूरी भी चला गया । अब रास्ता बिलकुल साफ़ है । भैया आशाराम, अब अपना रास्ता नापो ।

[बड़ी पेंठ से छड़ी घुमाता हुआ जाता है

दूसरा दृश्य

स्थान—रावबहादुर का शृंगार-गृह (ड्रेसिंग-रूम)

[शीशा, ब्रुश वग़ैरह सामान मौजूद हैं]

रावबहादुर—(सामने रक्खी हुई एक योरपियन की तसवीर और शीशे की ओर देखकर) ठीक हो गया । जान पड़ता है, मेरी पोशाक वैसी ही ठीक हो गई, जैसी कि इस तसवीर में है । यह कमीज़, यह पतलून, यह जाकेट (कमीज़ को

पतलून के भीतर ठूँसकर बटन लगाता हुआ) सब बिलकुल ठीक-ठाक है। उसी तरह ये बूट, मोज़े—अरे! मैं बिलकुल ही भूल गया! बूट चढ़ाने का यह हाथी-दाँत का चम्मच—अरे उसे अँगरेज़ी में क्या कहते हैं? भूल गया—बिलकुल ही भूल गया। मेरा यह भूलने का स्वभाव मुझे हर जगह दिक़ करता है। ख़ैर! यह बूट मुझे इसी चमचे की सहायता से पहनना चाहिए था; पर मैंने तो हाथ ही से पहन लिया। राम-राम! अब ऐसी भूल फिर कभी न करूँगा। हाँ, यह कोट मैंने कैसा अच्छा पहन लिया है। कमीज़ के कफ़ के सुनहरे बटन साफ़ बाहर देख पड़ते हैं। गले में बँधी हुई नेकटाई, इत्र में बसा हुआ रूमाल और जाकेट के पाकेटों में एक तरफ़ घड़ी और दूसरी तरफ़ चेन कैसी अच्छी लगती है। इस तरह अब मैं फ़ैशनेबुल बन गया हूँ। आशा नहीं थी कि मैं इतनी जल्दी पोशाक पहनना सीख जाऊँगा। इसके लिये मैं अपनी जितनी तारीफ़ करूँ, थोड़ी है। (आईने में मुँह देखता है) वाह, कैसी बढ़िया पोशाक है! मैं ज़िंदगी-भर में ऐसी सुंदर, ऐसी बढ़िया पोशाक पहने कभी न देखा गया हूँगा। हाँ, मेरे ये बाल ज़रूर कुछ कड़े जँचते हैं। पँः, इनको क्या पर्वा, साफ़े के नीचे ढक जायँगे। (इतने में कुछ याद आ गई) ओह, उन मेरे नए मित्र ने बालों में लगाने के लिये क्या बतलाया था? उसको बालों में चुपड़ देना चाहिए। (घड़ी देखकर)

अरे कान्हसिंह अब तक उस चीज़ को लेकर नहीं लौटा ! इतनी देर क्यों हुई ? (टेबिल की दराज से पर्चा निकालकर) यह क्या लिखा है—'मोमेंटम् एंड वेक्सिनेशन'। अरे कोई है—दौलत, ओ दौलत !

दौलत—(प्रवेश करके) जी ।

रावबहादुर—देख तो, वह जमादार कान्हसिंह सदर से लौट आया हो, तो उसको बुला ला । (दौलत जाता है) मिस्टर आशाराम कहते थे कि 'मोमेंटम् एंड वेक्सिनेशन' लगा देने से बाल इतने नरम हो जाते हैं कि जिस तरफ़ मोड़ना चाहो, उसी तरफ़ आसानी से मुड़ जाते हैं । जहाँ बाल नरम हुए कि मैं बड़ी शान से टेढ़ी टोपी पहनकर निकलूँगा। फिर किसकी हिम्मत है, जो मुझे सरदार-घराने का न कहे ! आहा-हा, ऐसी पोशाक पहने जो मुझे रामबाई ने देख लिया, तो फिर पाँचों घी में हैं। मुझे फ़ैशनेबुल बनाने में प्रधान सहायक मेरे सच्चे मित्र आशाराम ही हैं । इसमें शक नहीं कि वह कुछ ख़र्चीले ज़रूर हैं, पर आदमी हैं बड़े मज़े के। इस नई पोशाक ने तो एक तरह से मेरा काया-कल्प ही कर दिया है। अजी दूसरा जन्म हो गया ! भला यह अंधेर तो देखो कि शहर-भर के सभी मज़कूरी उस बेचारे आशाराम के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं । भले आदमियों का संसार में कहीं भी ठिकाना नहीं। ओफ़ ! उनका चाचा कितना निठुर है ! यदि मैं

समय पर आशाराम की सहायता न करता, तो वे लोग उन्हें जेल में ठेले बिना न रहते। पहले रामप्रसाद डॉक्टर को थैंक्स देना चाहिए; क्योंकि उन्हीं की बदौलत इस नए आदमी से मेरी मुलाक़ात हुई है। संभव है, उस सुंदरी रामबाई से इसी के द्वारा जान-पहचान हो जाय।

[कान्हसिंह का प्रवेश

रावबहादुर—क्यों कान्हसिंह, मैंने जो सामान मँगाया था, वह मिला?

कान्हसिंह—हाँ सरकार, आपने जो चीज़ मँगाई थी, उसका पता मैं ले आया। आपके पास आ ही रहा था कि दौलत पहुँचा।

रावबहादुर—वह चीज़ ले आए?

कान्हसिंह—मैं एक बड़ी दूकान में गया था। वहाँ वह चीज़ माँगी, तो दूकानदार ने कहा कि हमारे यहाँ नहीं है।

रावबहादुर—यू जंगली! क्यों रे, कौन-सी चीज़? नालायक़ तेरा सिर! तू बिलकुल गँवार है।

कान्हसिंह—नहीं हुज़ूर, मेरी बात तो सुनिए। बहुत खोजने पर एक आदमी ने कहा कि वह चीज़ डॉक्टरों के यहाँ मिलती है। उसने एक डॉक्टर का घर भी बता दिया।

रावबहादुर—अच्छा, फिर क्या हुआ? डॉक्टर ने वह चीज़ दी या नहीं?

कान्हसिंह—मैं कह तो रहा हूँ सरकार, सुनते जाइए। मैंने वह पर्चा डॉक्टर को दिया। उसने पढ़कर पूछा, यह किसने मँगाया है? मैंने कहा, मुझे ही चाहिए। तब उसने एक नश्तर निकाला, और आलमारी से बोतल निकालकर कहा कि अच्छा खोलो। हुज़ूर, उस वक्त मुझे कहना पड़ा कि मुझे नहीं, मेरे मालिक को चाहिए। अब डॉक्टर ने आपको वहीं बुलाया है। वहाँ आपके गए बिना कैसे काम होगा? आपको वहाँ जाकर खोलना पड़ेगा, तब कहीं वह चीज़ मिलेगी।

रावबहादुर—हमने कहा कुछ, और तूने सुना कुछ। चल, हट यहाँ से। कहता है, "मैं बड़े आदमियों के यहाँ नौकर रहा हूँ।" लेकिन तुझे रत्ती-भर भी शऊर नहीं है। तू निरी बातें बनाना जानता है। राम-राम, ऐसे आदमी किसी काम के नहीं होते। ऐसे गधों से क्या कहूँ? (गुस्सा होकर उसे मारने को दौड़ता है; पर वह पहले ही भाग जाता है। इस गड़बड़ में धोती के ऊपर पहनी हुई पतलून नीचे को सरक जाती है) अरे, यह क्या हो गया? हाँ, मैं तो भूल ही गया। जाकेट के ऊपर से वह—वह—अरे मैं उसका नाम ही भूल गया! अरे दौलत, ओ दौलत (दौलत का प्रवेश) ज़रा कान्हसिंह को तो बुला दे। अच्छा हुआ कि मुझे यहीं याद आ गई, नहीं तो बड़ी फ़ज़ीहत होती। (कान्हसिंह का प्रवेश) अरे कान्ह, मेरे वे—मेरे वे—जिन्हें मैं ले आया था, कहाँ हैं?

कान्हसिंह—क्या हुज़ूर ?

रावबहादुर—अरे वे (उँगलियों से संकेत करता है) वे ।

कान्हसिंह—रावबहादुर साहब, साफ़-साफ़ नाम बतलाइए । ये-वे का मतलब मैं क्या समझूँ ?

रावबहादुर—अरे गधे, वे चमड़े के बने हुए ।

कान्हसिंह—बहुत अच्छा सरकार, मैं समझ गया । अभी लिए आता हूँ । [जाता है

रावबहादुर—(शीशे में अपना प्रतिबिंब देखकर) अच्छा, आज रामबाई के दरवाज़े से होकर निकलना चाहिए । इससे एक फ़ायदा होगा । जो कहीं रास्ते में वह मुझे अच्छी तरह देख लेगी, तो आधा काम बन जायगा । (इसी समय कान्हसिंह घोड़े की लगाम और हलका वग़ैरह लेकर आता है)

रावबहादुर—अरे गधे, यह लगाम और गाड़ी जोतने का सामान यहाँ किस लिये ले आया ! (हाथ से पतलून थामकर मारने को दौड़ता है। इसी समय दूसरी ओर से आशाराम का प्रवेश)

आशाराम—(स्वगत) जब से यह चिड़िया मेरे फंदे में फँसी है, तब से मेरी हालत बहुत कुछ सुधर गई है। मेरी क़िस्मत अच्छी है, तभी तो इतनी जल्दी इससे मेरी जान-पहचान हो गई। मैंने उस परम सुंदरी रामबाई के संबंध में जो आशा का पुल बाँधा है, वह अब कुछ-कुछ पक्का हो चला है । उस रमणी से एक बार

चार आँखें होते ही बहुत कुछ काम बन जायगा। आज इसे पग-पग पर फ़ैशन की तालीम देते-देते पार्टी में जाना है। (प्रकट, आश्चर्य से) रावबहादुर साहब, आप उस बेचारे पर इतने नाराज़ क्यों हो रहे हैं ?

रावबहादुर—अरे मित्र, मैंने इस गधे से कहा कि कमीज़ पर पहनने की पट्टियाँ ले आ। सो, वह तो लाया नहीं—ले आया घोड़े का साज़ !

आशाराम—बस, यही बात है ! आपको जिन पट्टियों की ज़रूरत है, उनके बदले यह घोड़े का सामान ले आया ! (स्वगत) तब तो इसने कुछ ग़लती नहीं की। तू तो बचा घोड़े से भी गया-गुज़रा है।

रावबहादुर—अजी, यही एक बात थोड़े है। कल आपने जो सिर में लगाने की दवा बतलाई थी, उसका भी तो इसने यही हाल किया। कहता था—वह तो और कहीं मिल ही नहीं सकती। एक डॉक्टर के यहाँ गया, सो कहता है कि खोलो सुअर का बच्चा—

आशाराम—यह आप भूल ही गए कि वह एक फ़ैशनेबुलों में है। इस तरह बोलने का फ़ैशन नहीं है।

कान्हसिंह—हाँ सरकार, ज़रा देखिए, तो सही, यह कैसी गँवारों की तरह बात-चीत कर रहे हैं !

रावबहादुर—क्यों बे पाजी, यह सरकार हैं, और

मैं, जो तुझे तनख़्वाह देता हूँ, सो मेरी बात-चीत गँवारों की तरह जान पड़ती है तुझे नमकहराम !

कान्हसिंह—नहीं सरकार, आप तो मेरे मालिक मा-बाप हैं। मगर आप फ़ैशन के ख़िलाफ़ गुफ़्तगू करते हैं, इसी से गुस्सा आता है।

आशाराम—जाने दीजिए। आप तो ज़रा-सी बात के पीछे पड़े हैं। आगे के लिये होशियार हो जाइए। हाँ, यह तो बतलाइए कि आपने इससे क्या मँगवाया था ?

कान्हसिंह—यह देखिए। (चिट्ठी खोलकर दिखलाता है)

आशाराम—(देखकर हँसता है) हः-हः-हः !

रावबहादुर—(झेंपकर) ऐं ! आप हँसने लगे !

आशाराम—(स्वगत) मेरा अनुमान ठीक निकला। इस गधे ने पोमेटम् के बदले मोमेंटम् लिख दिया। अब अगर जमादार रोता न आवे, तो क्या करे ! (प्रकट) यह आपने क्या लिख दिया था ?

रावबहादुर—ज़रा धीरे-धीरे बात-चीत कीजिए। जो आप बतला गए थे, वही तो मैंने लिखा है।

आशाराम—देखिए, मैंने कहा था कि नहीं कि आप भी मेरी ही तरह एक नोट-बुक हमेशा अपने पास रक्खें। ऐसा करने से कभी ज़रूरी बातें नहीं भूलतीं।

रावबहादुर—अच्छा, बतलाइए तो सही, क्या ग़लती हो गई ?

आशाराम—आपने वेसलीन के बदले वेक्सिनेशन लिख दिया है, और उस बेक़सूर कान्हसिंह को नाहक़ डपट रहे हैं।

रावबहादुर—(धीरे से) माफ़ कीजिए। इसके आगे तो ऐसी बातें न कीजिए। (कान्हसिंह से) अच्छा, अब तुम जाओ। (कान्हसिंह ने भीतर से ग्रेसीस लाकर टेबिल पर रख दिए, फिर वह सलाम करके चला गया) अच्छा, अब वह इस समय कहाँ मिलेगी? कहीं पास की दूकान में मिल जायगी? आप ही न ला दीजिए। (आशाराम का हाथ पकड़कर, बड़े आदर से) अभी ले आइए। जाइए, मेरी जोड़ी जुती खड़ी है।

आशाराम—(स्वगत) अब देखो बच्चाजी को, मुझी को सदर भेजते हैं। (घड़ी की ओर देखकर) देखिए तो, आपको पार्टी में शामिल होना है। देर न हो जायगी?

रावबहादुर—(घड़ी देखकर) केवल आधघंटा रह गया है। अब क्या होगा? (जल्दी से) अजी जाओ भी, कहीं पास की दूकान से झटपट ले आओ। कितने में मिलेगी?

आशाराम—ऊँः, बहुत हुआ, तो सात-आठ रुपए लगेंगे।

रावबहादुर—क्या कहा? सात-आठ रुपए? आप तो कहते थे कि सदर में दो ही तीन रुपए में मिलती है।

आशाराम—इनकार कौन करता है? सदर और शहर में कुछ फ़र्क़ तो रहेगा ही। (खाँसकर) नहीं तो ऐसे ही चले चलिए। उसके न होने से कुछ फ़ैशन नहीं बिगड़ता। बाल तो साफ़े में छिपे रहेंगे।

रावबहादुर—अजी राम का नाम लीजिए। इस तरह काम नहीं चलेगा। अगर आठ की जगह दस लग जायँ, तो भी कुछ पर्वा नहीं। (दराज़ से नोट निकालकर) अरे भई, दस रुपए का नोट नहीं है, पचास रुपए का है। अभी इसी को लेते जाओ, और झटपट किसी तरह ले आओ।

आशाराम—(जाता हुआ) मैं माँगता हूँ एक, और विधाता देता है दो। आठ आने की जगह पूरे पचास मिल गए। ये किसे काटते हैं? इन रुपयों से अभी दर्ज़ी और ग्वाले का मुँह बंद किया जा सकता है। इस संसार में विधाता ने जो ऐसे 'आँख के अंधे और गाँठ के पूरे' पैदा न किए होते, तो हम लोगों का निर्वाह ही किस तरह होता? फ़ैशन का भूत इसपर इस तरह सवार हो गया है कि यह विना आगा-पीछा सोचे ही चाहे जो काम कर डालेगा। इस मामले में यह आँख खोलकर देखेगा भी नहीं। ख़ैर अब मुझे अपना काम कर डालना चाहिए।

[जाता है

रावबहादुर—अब कान्हसिंह के लाए हुए ब्रेसीस पहनना चाहिए। (पहनता है) जान पड़ता है, यह आशाराम

मुझे ज़रूर ठगेगा। सदर और शहर के भाव में दुगना फ़र्क़ बतलाता है। क्या मैं यह भी नहीं समझ सकता कि इतना फ़र्क़ हर्गिज़ नहीं हो सकता। अच्छा, जाने दो, इन बातों में क्या रक्खा है। वह मुझे बिलकुल ही अनजान समझता होगा। पर बच्चाजी, मुझे अभी पहचाना ही कहाँ है ? या जैसा वह कहता है, वैसा ही हो ; क्योंकि हम लोग तो उड़ती चिड़िया पहचानते हैं। वह मुझे कभी झाँसा नहीं दे सकता। क्या मजाल कि मेरे आगे झूठ बोले। अतएव उसकी बात सच होगी। क्या उसे यह नहीं मालूम कि मुझे मामूली आदमी धोका नहीं दे सकते। जो मैं ऐसा भोंदू होता, तो मुझे यह पदवी स्वप्न में भी न मिल सकती। आजकल यों ही पदवियाँ नहीं मिल जातीं ! (मूछों पर ताव देता है) होशियारी चाहिए, होशियारी ! उँः, पर अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू बनने में क्या फ़ायदा । मेरी होशियारी को तो दुनिया देखती है। मगर मेरा सारा दारमदार उस आशा-राम पर ही है। उसे न भूलना चाहिए। किसी तरह फुसलाकर उसे अपना जमाई बना लेना चाहिए । सुना है, इन बच्चा की भी उस रामबाई पर नज़र है ! (सोचकर) हुश, वहाँ इनकी दाल किसी तरह नहीं गल सकती; क्योंकि वह सुंदरी मेरे-जैसे गबरू जवान छैला को छोड़कर इस बंदर पर कैसे रीझेगी ! मेरी कन्या मालती को पाकर फिर तो यह रामबाई पर किसी प्रकार प्रेम कर

ही नहीं सकता। मुझ-जैसे सरदार की लड़की का पति बनने के लिये नसीब चाहिए, नसीब। और, जब उसे ख़ास रावबहादुर की लड़की मिलेगी, तब तो वह ख़ुशी के मारे नाचने लगेगा! (नाचता है) लिखना-पढ़ना सीखकर मेरी लड़की इतनी होशियार और फ़ैशनेबुल हो गई है कि वह इसकी जोड़ तो क्या, यदि किसी राजा को ब्याही जाय, तो राजरानी सज सकती है। एक बात और है। मैं रामबाई के साथ पुनर्विवाह करनेवाला हूँ, इससे सुधारक लोग भी मेरे पक्ष में हो जायँगे। ऐसा हो जाने पर मैं उनका अगुआ बनूँगा। (कुछ सोचकर) किंतु मुझे एक बात की बिलकुल ख़बर ही नहीं। मेरी यह विवाहिता स्त्री अब बहुत ढीठ हो गई है। यह मेरी शांति में विघ्न डाले बिना न रहेगी। एक तो यह बिलकुल देहाती—निरी गँवार—है, दूसरे इसे बड़े घर की बनने की महत्त्वाकांक्षा है ही नहीं! इसका मुँह ख़ासा तोपख़ाना है। मैं तो अब इस कलूटी का मुँह देखना भी पसंद नहीं करता। ओफ़, कैसी भद्दी सूरत है। और, जब यह माथे में सेंदुर की बड़ी-सी टिकली लगा लेती है, तब तो साक्षात् चुड़ैल बन जाती है! भिखारिन कभी बढ़िया कपड़े नहीं पहनना चाहती। मदारी के झोले की तरह ढीली-ढाली कुर्ती, धुनी हुई रुई की तरह बालों की लटें, और सुपतले की तरह साड़ी के छोर

लटकते देखकर ऐसा लगता है, मानो बरगद के पेड़ से चुड़ैल उतरकर आ गई है। इसके मैकेवाले तो इससे भी गए-बीते हैं! किसी बहाने इस बला को यहाँ से टाल देने में ही भला है।

मनिकाबाई—(रूठी हुई आती है) किसे ? किसे मैके भेजना चाहते हो ? मुझे ? मुझे क्या पड़ी है वहाँ जाने की ? मेरी बला जाती है वहाँ ! क्या कहा, माथे में गाड़ी के पहिए-जैसी सेंदुर की टिकली लगाती हूँ ? खूब करती हूँ लगाती हूँ, क्या किसी की चोरी करती हूँ ? डर है किसी के दादा का ? जब तुम न रहोगे, तब न लगाऊँगी। समझे गए ! और, जैसे वह राँड़ रमाबाई अपने पति के पीछे—विधवा होने पर भी—नखरे करती है, बनी-ठनी फिरती है, वैसे मैं न फिरूँगी। समझे ! मुझे चुड़ैल बताते हो, अपनी तरफ़ नहीं देखते। पहाड़ के कौए की तरह हो। अपना मुँह तो देखो। यह काली-काली खोपड़ी और यह रँगे हुए खप्पर के माफ़िक़ तुम्हारा मुँह कैसा सलोना लगता है। उस पर क्रिस्तानों की-सी पोशाक और भी मज़ा देती है। ऐसे ढोंग तो मैं नज़र से देखना भी नहीं चाहती। परंतु—

रावबहादुर—(स्वगत) यह आफ़त कहाँ से आ गई। मैंने क्रोध में जो मुँह में आया, कह डाला। जान पड़ता है, इसने छिपकर कुल बातें सुन ली हैं। (प्रकट) चल, हट,

जा यहाँ से। अब तेरा मुँह बहुत बढ़ गया है। गड़बड़ भी तू कुछ कम नहीं करती। अच्छा, अब यहाँ से जाती है कि नहीं? मैं तो तेरा मुँह भी नहीं देखना चाहता!

मनिकाबाई—मेरा मुँह देखने से ही तो इतनी दौलत मिली है, और उसी के बदौलत ये ढंग रच रहे हो। नहीं तो ज़िंदगी-भर हाथ से हल और खोपड़ी से खुड़हा न छूटता! मेरे मैकेवालों को गँवार-देहाती कहते हो। अभी, इतनी जल्दी, भूल गए कि तुम्हारे बाप की सारी उमर गोरू चराने और रस्सी बटने में ही बीती थी। बढ़-बढ़कर बातें मारते शरम नहीं आती!

रावबहादुर—बस-बस, रहने दे। अब बहुत हो चुका। बहुत बक-झक अच्छी नहीं होती। नौकर-चाकर सुन लेंगे, तो क्या कहेंगे?

मनिकाबाई—कहेंगे क्या, समझ लेंगे कि हमारे मालिक के बाप रस्सी बटते रहते थे। तुम चाहे जितना बड़ी-बड़ी आँखें निकालो, मैं इस तरह डरनेवाली नहीं। मेरे बाप के यहाँ रुपए कुछ फ़ालतू न थे! उन्होंने तुम्हें यह दौलत इसीलिये दी थी कि इसकी सहायता से तुम अच्छे-अच्छे काम करोगे, उनकी लड़की के साथ अच्छा सलूक करोगे। इन लुच्चों के फंदे में पड़कर क्रिस्तानों की-सी पोशाक पहनने और उस बाज़ारू औरत के साथ विधवा-विवाह करने के लिये उन्होंने तुम्हें यह धन नहीं दिया था।

रावबहादुर—अच्छा, अच्छा, अब जाओ। खूब चरखा चला। वह देखो, आशाराम आ रहे हैं। मालती के हाथ चाय भेज दो। जाओ, भीतर जाओ।

मनिकाबाई—क्या कहा? ऐसी बात कहते तुम्हें लाज नहीं आती। तुम्हारी जीभ क्यों नहीं कटकर गिर जाती! मेरी मालती ऐसे गँवारों, लुच्चों, दिवालियों के लिये चाय ले आवेगी? कभी नहीं।

रावबहादुर—चुप, चुप। (मनिकाबाई को भीतर के दरवाजे से ढकेलकर किंवाड़ बंद करता और शीशे में मुँह देखता है) कितनी नासमझ है! मैं अब पहले की बनिस्बत बहुत ही अच्छा देख पड़ता हूँ, तो भी राँड़ कहती है कि क्रिस्तानों का-सा लिबास है। मुझे देसी ईसाई बताती है। देहाती है, बिलकुल देहाती! इसे रूप की बिलकुल ही परख नहीं। (आशाराम आता है) क्यों, ले आए?

आशाराम—जी हाँ, ले आया। अब झटपट तैयार हो जाइए। बहुत देर हो गई। (जल्दी चलने के लिये आग्रह करता है। रावबहादुर शीशी का तेल हथेली में उँडेलकर सिर में चुपड़ता और शीशी के आगे खड़ा होकर सिर पर ब्रुश फेरता है। परंतु बाल अच्छी तरह नहीं चिपकते) रावबहादुर साहब, बहुत अच्छे बाल हो गए। अब जल्दी साफ़ा बाँध लीजिए। (घड़ी देखकर) अजी बहुत देर हो गई। (रावबहादुर साफ़ा बाँधता है)

रावबहादुर—(याद करके ज़ोर से पुकारता है) अरे

कान्हा, ओ पलटू, (भड़कीली पोशाक पहने दोनों नौकर आते और अदब से सलाम करते हैं । उन्हें देखकर हँसता हुआ) तुम्हें इसी-लिये बुलाया है कि देखें, तुम हुक्म के कहाँ तक पाबंद हो। क्यों आशारामजी, इनकी पोशाक कैसी है ? बढ़िया है न ?

[सब जाते हैं

तीसरा दृश्य

स्थान—रावबहादुर के मकान का एक दालान

[दमड़ी और उसके पीछे-पीछे भगुआ प्रवेश करता है]

दमड़ी—(पीछे देखकर) हाँ-हाँ, खबरदार, मुँहका तुम्हार अइस पीछे-पीछे फिरब नीक नहीं लागत । साफ कहति हौं । अइस कूकुर की तरा घेरे ते हियाँ कुछु न होई !

भगुवा—हाँ, हाँ, यहु नखरा ! या दिहाती चोचला ! मारे मिजाजु के दूबरि हैं !

दमड़ी—का कह्यो ? जानति हो, मैं को आहिउँ ?

भगुवा—तुम आहिउ । तुम ही यहि भगुवा जमादार की मिहरारू हुई हौ । और दूसर का ?

दमड़ी—जीभ माँ पानी आवै लाग ? मैं रावबहादुर साहब के जनानखाने कै जमादारिन आहिउँ, जमादारिन !

भगुवा—का कहेउ ? रावबहादुर कै जमादारिन कि मोर जमादारिन ? वा बूढ़ै बाँदर तोर रावबहादुर के एक चुड़ै.. है । अब तुहका, दूसर डाँइन का, लइके का करिहै ?

दमड़ी—तुम्हार बोल मोका नहीं सोहात। साफ़ कहति हौं। मोका मालती समझा हउ! तुम्हरे मालिक के सामने मालती कइसे खिलखिलात है, कइसे रिसाय जाइत ही, औ कइसे बेजारी का बहाना करति ही। मुदा हमते या याकौ न चली।

भगुवा—हियाँ केहिकी गरजु है। मैं बिसनूलाल की तराँ पावँ थोरे परिहौं! मैं जो दमाद हुइहौं, तो मोर दिमाकु दीख्यो। ससुरौ पावँ परैं, औ तुम हूँ नाक रगरौ, तब हूँ आँखी उठायके न ह्यारों! (मुँह फेर लेता है)

दमड़ी—त का याक तरफ का मुँह करिकै अकेल रहिहौ। (रोकर दिखलाती है)

भगुवा—अँः, नामर्द रोवत हैं। तोरि अइस मिहिरिया मिली त धक्का दैके निकारि दीन जाई। (उसे धक्का देकर प्यार करना चाहता है)

दमड़ी—(धक्का देकर) यइ मोका नहीं सोहात।

भगुवा—औ मोहूँ का (फिर प्यार करने को बढ़ता है)

दमड़ी—बेसरम कतउँ का! मोका अबै नहीं जनते? अबहीं रावबहादुर ते कहिके घरी भरे माँ ठीक कराय दिहौं।

भगुवा—रावबहादुर के बड़ी ठसक दिखउती हौ। उइ मोर का किहे लेत हैं? का फाँसी माँ लटकाय दिहैं?

दमड़ी—तौन का बचि जैहो? उइ रावबहादुर हुइ गे हैं। बड़न-बड़न के पास उठै-बैठै लाग हैं। सभा माँ जात हैं,

औ का कहावत है वा लिच्चर—लिच्चर—माँ जात हैं। उइ लकड़ी के हाथ सिखत हैं, औ एकु पंडित पढ़ावैं का आवत है। कलाँउत गाना सिखवत है। उइ तुम्हार आदत सुधार चाहैं।

भगुवा—हमारि आदत दुरुस्त करि चाहैं ? चाखव राँड़ि के दिमाकु ! जा, जा ! अइस डाँकिन को लेई ? अब कौनिउँ नीकि-नीकि ढूँढ़ै जाति हौं (जाने लगता है)

दमड़ी—(रोककर) यहु का करति हौ ? रिसान काहे का जाति हौ ?

भगुवा—नाहीं तौ का करौं ? तुइ तौ रावबहादुर कै डाँट बतावति ही। मैं अइसि मिहरारू लइके का करिहौं ?

दमड़ी—(विनती करती है) तुम हूँ साँचे मानि लीन्ह्यो। या दमड़ी अइस लुच्चुपन करी ?

भगुवा—अब आय गइउ राह माँ। अब एक और—

दमड़ी—ऊँः फिर वहै बात ! तुम्हरे सरम तनिकौ नहिं आय ! (इसी समय भीतर से 'दमड़ी, ओ दमड़ी !' की पुकार होती है) हमरी मलकिन बुलौती हैं। बिसनूलाल हियाँ कवै अइहैं।

भगुवा—या काहे ? अब जानि परा ? हूँ, उइ अइहैं त महूँ अइहौं। हाँ, हाँ, यहै बात !

दमड़ी—बहुत न बकौ, जाव।

[जाती है

भगुवा—मिहरिया तौ बहुतै नीक है। आजु का दिन बहुतै नीक गा। इहिके मन का हाल तौ जानि लीन्ह। अब

पहिका नहीं छोड़तेन । अरे ! पहिके मारे तो मलिकन का कामु रहि गा । बजार जल्दी जावा चही ।

[जाता है

चौथा दृश्य

स्थान—रायबहादुर के घर का भीतरी दालान

[मनिकाबाई दाल-चावल बीन रही है]

मनिकाबाई—परमेश्वर, न-जाने तूने मेरी क़िस्मत में क्या-क्या लिख दिया है ! कहते थे, इसे मैके भेजकर उस राँड़ के साथ विधवा-विवाह करेंगे। आधी उमर बीत गई, पर ये लड़कों के-से खेल अब तक नहीं छूटते। अजान बच्चों का-सा नाचना-कूदना इन्हें अच्छा लगता है । दिन-भर ब्याह की चिंता रहती है। और कुछ काम ही नहीं है। इस नासमझी को क्या कहूँ ? कर न लें ब्याह, मुझे क्या करना है। इसके लिये मैं कितनी फ़िक्र करूँ ? और फ़िक्र करने से होता ही क्या है ? पर जब दुनियाँ इनके मुँह पर थूकेगी, तब उसकी छींटें क्या मेरे मुँह पर न पड़ेंगी ? रोज़ नाच-तमाशा, गाना-बजाना होता है। साहबों को दावतें दी जाती हैं। पर मैं कहती हूँ कि मोर के पंख बाँध लेने से कहीं कौआ भी मोर हुआ है। बहुत पढ़े-लिखे साहबों और सरदारों की बराबरी करने में इन्हें लाज क्यों नहीं लगती ? वहाँ इनकी कैसे इज़्ज़त बनी रहती है ? अभी परसों ही

कहते थे कि समाचारपत्र मेरी खूब धज्जियाँ उड़ा रहे हैं। पर उसे भी तो कोई पढ़कर सुनावे, तब न! खुद तो पढ़ना-लिखना जानते ही नहीं, अर्थ और रहस्य इनकी समझ में कैसे आवेगा? और समाचारपत्र ही क्यों ताने देने से चूकें? यह अपनी योग्यता को भूलकर जब मूर्खों का-सा बरताव करने लगे हैं, तब औरों को दोष किस मुँह से दिया जाय? इसे दुर्दशा का ही लक्षण समझना चाहिए कि इनके पानी की तरह रुपए बह रहे हैं, ऊपर से लोग इन्हें मूर्ख बनाते हैं—मज़ाक़ करते हैं।

मालती—(प्रवेशकर) अम्मा, तू दिन-भर क्या सोचती रहती है?

मनिकाबाई—सोचूँगी क्या, बेटी, अपनी क़िस्मत को रोती हूँ।

मालती—जो होना है, वह तो होगा ही, तू क्यों नाहक़ चिंता की चिता में जला करती है? इससे लाभ ही क्या है?

मनिकाबाई—मैं चिंता को न्योता देने कब जाती हूँ? वह तो आप ही रात-दिन देह को जलाया करती है। बेटी, अब तू ब्याहने योग्य हो गई है; सो तेरी तो चिंता नहीं है। पर यह उस राँड़ के साथ विधवा-विवाह करने के लिये तरह-तरह के प्रयत्न कर रहे हैं।

मालती—अम्मा, तुझसे ये—नहीं-नहीं—वे बातें कौन कह जाता है?

मनिकाबाई—कहन कौन आवेगा ? मैं खुद सुन आई हूँ। यही नहीं, कहते हैं तेरा ब्याह उस आशाराम के—

मालती—अम्मा, तू इसकी बिलकुल फ़िक्र मत कर। उनकी एक भी बात सिद्ध न होगी। मैंने सुना है, रामबाई आशाराम को जी-जान से चाहती है; और वह भी उसके साथ ब्याह करने के लिये व्याकुल है।

मनिकाबाई—जो ऐसा हो, तब तो बड़ी ही अच्छी बात है। भगवान् ऐसा ही करें। परंतु— (इतने में दौलत आता है)

दौलत—बुआ, तुम तौ कहती हौ कि हियाँ रहौ, मुदा अब तौ हमरे बापौ ते न रहा जाई। बुआ, आजु यहु नहिन, कालिह वहु नहिन—रोज़-रोज़ येई बातें हावा करती हैं। का हम तुम्हारि नौकर आहिन, जौन तुम हमका यतनी तकलीफ देती हौ ? जब कोऊ कबहूँ बाहेर ते आवत है, तब सार हौहाय के दउरत है ! तुम जनती हुइहौ कि दौलतिया बियाहु करावै के बरे हमरे पाँयन परी, तौ भई, यहु तौ हमरे बापौ ते ना होई। हम तौ साफ कहित है। बियाहु होय, चहै ना होय, मुदा यहि तना की बातैं तौ हम ना सुनब। बुआ आहीं, तौ का भा ? हम तौ यहि तना की बातैं अपने बापौ की नाहीं सहित्। फिर ई कउने ख्यात कै मूरी आहीं ? क्रिस्तानन के असि तौ कपरा पहिरत हैं। भई, हमका तौ ई बातें बड़ी खराब लगती हैं। जो हमार आप सुनी कि ई मुसलमानी चालु

चलै लागि हैं, तौ हमका औ तुमका दूनौ जनेन का अपनि डेहरी न नाँघै देईं। हम तौ अपने घरै जइबे ।

मनिकाबाई—अरे दौलत, तू तो बिलकुल पागल हो गया है। यह तूने कैसे जाना कि तेरे ऊपर नाराज़ी होती है, और मेरे ऊपर नहीं? क्या किया जाय, लाचारी है। तू उनकी बातों पर ध्यान ही न दिया कर।

दौलत—का कहौ, कउनौ उपाव नाहिन? हमरे घरै चलौ, हुवाँ दूनौ जने बाप के लगे रहिबे। सच्ची पूछौ, तौ हमरे बाबा तौ गदहा रहे हैं। जो हमरी नहित ससुरु होत, तौ यहि-का याक फूटि कउड़िउ ना द्यात। दमाद भे, तौ का भा? बाबा ते अब को कहै। जो हमार बापु कुछु कहैं, तौ बाबा कहतिन कि यहि सारे का बड़ा लालचु है, तबहीं तौ रोआँकत है।

मनिकाबाई—अरे, तू अकेला घर चला जायगा, और मैं यहाँ अकेली रह जाऊँगी? मैं तो घर-बार छोड़कर जा ही नहीं सकती। अब तू कौन-सा मुँह लेकर घर जायगा? बाप ने घर से निकाल दिया था, इसी से तो तू यहाँ आया था।

दौलत—जउन तुम कहती हौ, तउन ठीक है। मुदा यहु कइसे होइ सकत है कि हम बापू ते रिसायकै फूफा के जूता खावा करी? राम! राम! हमते तौ यहु न होई। हम साफ-साफ कहे देइत है।

मनिकाबाई—तू तो बिलकुल पागल है। उनके कहने से क्या होता है? मैं तो तुझसे कुछ नहीं कहती।

दौलत—का तुम नहीं जनतिउ, मालतिउ बइसिही है। वहौ हुआँ—उहिका का कहति हैं—मदरसा माँ जाति है! हम तौ मंसवा आहिन। तउन हमका तौ कार अच्छरु भइसि की बरोबरि है, मुदा यहि का द्याखव, गोंइयन के साथ माँ गिटपिट-गिटपिट करति है। जो कोऊ द्याखय, तो यहै कहै कि जानौ मेम आय!

मालती—(स्वगत) जिस बात को मैं डरती थी, वही आखिर आगे आई। (दौलत से) यदि मैं स्कूल जाता हूँ, तो तेरा क्या हर्ज होता है? ऐसे आदमी को स्त्री कैसे मिल सकती है, जो आप तो बुद्धि-हीन है ही, दूसरे को भी पढ़ते-लिखते देख जल-भुनकर खाक हो जाता है। मुझे तो आशा नहीं कि दमड़ी तेरे गले में जयमाल डालेगी।

दौलत—बुआ, दिख्यो मालती कइसि है? तिनुकु पढ़ि-लिखि गै है, तउनु सबका आँखी दिखावति है।

मनिकाबाई—दौलत, तू इसकी बातों में क्यों लगा है? जा, अपना काम देख। जो दमड़ी राज़ी न होगी, तो मैं तुझे और दूसरी दुलहिन ढूँढ़ दूँगी। तू क्यों फ़िक्र करता है? (दौलत जाता है) मालती, तू बड़ी बेअक़्ल है! तुझे यह नहीं सूझता कि वह अपने घर में रहता है; उससे ऐसी बातें करनी चाहिए कि नहीं! तुम दोनों—बाप-

बेटी—खूब होशियार हो गए। मैं ऐसी बातों को बिलकुल पसंद नहीं करती। तू भी उन्हीं के आचरण सीखेगी! मुझे तेरा स्वभाव अच्छा नहीं लगता। तुझे जो करना हो, सो किया कर; पर ख़बरदार, जो किसी से और कुछ कहा-सुनी की!

[क्रोधित होकर जाती है

मालती—माता और पिता, दोनों के आचरणों में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। वह हैं एक तरह के, मा है दूसरी तरह की। इनके पास रहना सहज काम नहीं। आहा! पिता ने पढ़ा-लिखाकर मेरा जन्म सुधार दिया। उन्होंने बहुत ही भला काम किया। पर माता उस योग्यता को नहीं जानती। अम्मा ने आज जो वह बात कही, उसे सुनकर मेरे जी में चिंता पैदा हो गई है। एक नया खटका लग गया। क्या उस मुए आशाराम के साथ मेरा गँठ-जोड़ा बाँधा जायगा? मुझे तो इस बात पर विश्वास ही नहीं होता। परंतु यह कौन कह सकता है कि बड़प्पन की बातों में भूलकर ख़ानदानी बनने की हवस में पिताजी क्या न कर बैठेंगे। प्राण भले ही चले जायँ, पर मैं उस बात को कभी स्वीकार न करूँगी।

[जाती है

[परदा गिरता है]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—रावबहादुर का बाहरी आँगन

[उस्ताद गणेशसिंह रावबहादुर को गदका-फरी और लाठी के हाथ सिखा रहे हैं]

गणेशसिंह—एसे तराँ खलोता रव। पैर नेड़े रख। हाथ-पैर एकट्ठे चलाव। सोटा इस तराँ हाथेज फड़के, लकड़ी मेरे सोटा उप्पर लगे। मेरा सोटा तेरे सोटे ते न लगे। क्यूँ भई, तू ये बात समझ लई? अगर नमर्दाँ ही वाँगर खड़ा हो गया, तो हुश्यार नहीं हो सकता! इक—दो—तीन—मारो!

रावबहादुर—(स्वगत) सचमुच लकड़ी की मार के हाथ सीखने में बड़ा मज़ा है।

गणेशसिंह—तूँ बड़ा बहादर है। इक बात याद रख, अपणे दुश्मन्नू मार, और ओनूँ जितले। ऐसा सोटा मारो, दुश्मन्नू जितलो, और आप ना हारो!

[इतने में पलटू खिदमतगार आता है

पलटू—(झुककर सलाम करता है) सरकार रावबहादुर साहब, आपका कलाँवतु आवा है।

रावबहादुर—फिर उन्हें अंदर क्यों नहीं आने देता ? पूछने क्या आया है ? (गणेशसिंह से) उस्तादजी, अगर मैं अच्छी तरह लाठी चलाना सीख जाऊँ, तो अकेला कितने आदमियों का सामना कर सकूँगा ?

गणेशसिंह—जीनूँ सोटा मारना अच्छा आवे, वो हज़ार-दो हज़ार आदमी से मार नई खाँदा !

रावबहादुर—तब तो मैं अकेला ही दस हज़ार आदमियों का मुक़ाबिला कर सकूँगा !

गणेशसिंह—बेशक, हाँ हो !

[इतने में गवैया तानपूरा लिए आता है

गवैया—(झुककर) सरकार, राम-राम, राम-राम (रावबहादुर सिर्फ़ सिर हिलाकर उसकी राम-राम लेता है) हुज़ूर, आज आप लाठी चलाना सीख रहे हैं ! हँः-हँः-हँः ! (हँसता है)

गणेशसिंह—(मूछों पर ताव देकर) क्यों ओ तंबोली-परशाद, तेरा मू क्यों काड़ा हो गया ? लड़ने दा काम बड़ा औखा है । तेरे वाँगर सारे आदमी शौकीनी हों, तो राजदा काम नई हो सकेगा !

गवैया—ज़रा मुँह सँभालकर बोल ! छोटे मुँह बड़ी बात मत कर !

गणेशसिंह—मेरे आगे की बात करता है ? मैं तेरे तंबूरे को तोड़ पान सिटूँगा ।

रावबहादुर—अजी तंबोरीलाल, उसके मुँह मत लगो ।

वह बड़ा होशियार आदमी है। दस हज़ार आदमी इसका बाल भी बाँका नहीं कर सकते।

गवैया—(गणेशसिंह से) देखो, मेरे साथ बात कर रहे हो। मेरे आगे तुम्हारी एक भी न चलेगी।

गणेशसिंह—की कहता है? (आस्तीन चढ़ाकर गवैए को मारने दौड़ता है; पर रावबहादुर बीच ही में रोक लेता है)

रावबहादुर—अँह उस्ताद, उसकी बातों में आप क्यों लगते हैं? (इतने में शास्त्रीजी आ गए) यह लो, शास्त्रीजी आ गए। अजी पंडितजी महाराज, आप कैसे अच्छे मौक़े पर आए हैं! अब आप ही इन दोनों का फ़ैसला कीजिए।

शास्त्रीजी—(ऐनक सँभालकर) क्या विषय समुपस्थित है? तुम दोनों एक दूसरे की ओर घूर-घूरकर क्यों देख रहे हो? यहाँ कलह की आवश्यकता ही क्या है?

रावबहादुर—एक कहता है कि संगीत उत्तम है, मगर दूसरा गदके-फरी के खेल और लाठी चलाने को बढ़कर बताता है। बस, यही इन दोनों के झगड़े की बुनियाद है। आप दिग्गज विद्वान् हैं, और आपने न्याय-शास्त्र का भी ख़ूब अध्ययन किया है। इससे कृपाकर आप ही बतलावें, इन दोनों कलाओं में श्रेष्ठ कौन है?

शास्त्रीजी—मूर्ख, महामूर्ख, इन दोनों ने न तो गीतार्थ-बोधिनी सुनी है, और न तत्त्वचिंतांबुधि पढ़ी है। यदि क्रोधित होकर मानव प्राणी ईश्वर-प्रदत्त सर्व-श्रेष्ठ बुद्धि का

इस प्रकार दुरुपयोग करने लगें, तो मनुष्य की अपेक्षा निर्बुद्धि पशु अच्छा समझा जायगा। मनु महाराज ने कहा है—

गवैया—बस, बहुत हुआ महाराज, रहने दीजिए अपनी ज्ञान-गाथा। संगीत की बराबरी का संसार में दूसरा हुनर ही नहीं है। जब इंद्र आदि देवता तक अप्सराओं का गाना सुनकर मगन हो जाते और वाह-वाह करने लगते हैं, तब हम मनुष्य हैं ही किस लेखे में!

गणेशसिंह—बदमाश, बोलो नहीं। ये जनानियों के काम हैं। जेकर आदमी कंजरियों की तराँ नाचें और गावें, बड़ी शरम की बात है! मैं सबनाँ से बोलता हूँ कि सारे पहलवान बन जाओ।

शास्त्रीजी—तो क्या तत्त्व-ज्ञान, धर्म-शास्त्र, न्याय, व्याकरण, सभी व्यर्थ हैं? ऐसे ओछे काम की क्यों इतनी व्यर्थ प्रशंसा कर रहे हो? तुम्हारी जीभ कटकर क्यों नहीं गिर पड़ती, जिससे तुम कभी फिर ऐसी बातें न कर सको। जंगलों में ऐसे न-जाने कितने गर्दभ और महिष विद्यमान हैं, जो गाने-बजाने और मारने-पीटने में तुमसे किसी प्रकार न्यून नहीं।

गणेशसिंह—(आस्तीनें चढ़ाकर शास्त्रीजी से) चुप रहो बदमाश कहीं का!

गवैया—(क्रोध से) अरे मूर्ख पंडता, जब तक तेरी हड्डी-

पसली एक न कर दी जायगी, तब तक तू यह अपनी ज्ञान-गाथा बंद न करेगा।

शास्त्रीजी—(दोनों से) मूर्खाधिराजो, तुम पशुओं की भाँति उद्दंड—(इतने में शास्त्रीजी को गवैया और गणेशसिंह जी भरकर ठोकते हैं) दुष्टो, पापियो, तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा। हटो पापियो।

रावबहादुर—अजी शास्त्रीजी—

गणेशसिंह—(शास्त्रीजी से) तेरे दंद भञ्ज सटूँगा।

रावबहादुर—ख़बरदार, ऐसा—

शास्त्रीजी—नीचो, पापियो, अधर्मियो—

रावबहादुर—अरे मित्र, अरे शास्त्री महाराज, अरे उस्ताद—ज़रा ठहरो, सुनो तो सही। आपस में इस तरह झगड़ो मत—सुनो, मेरी बात—

[तीनों मारते-पीटते जाते हैं

रावबहादुर—जाने दो, इनके बीच में कौन पड़े। मैं इतना मूर्ख नहीं कि इनके बीच-बचाव में पड़कर अपने इस्तिरी किए हुए फ़ैशनेबुल कोट को ख़राब करा डालूँ। जो इनके बीच-बचाव में पड़े, उसके प्रसाद-स्वरूप दो-एक घूसे लग जाना कोई बात ही नहीं। इससे फ़ायदा ही क्या? एकआध अच्छा-सा घूसा मेरे जो लग जाता, तो छठी के दूध की याद आ जाती।

[जाता है

दूसरा दृश्य

स्थान—आशाराम का कमरा

[आशाराम कमरे में टहल रहा है, और कुछ सोचता जाता है]

आशाराम—आजकल दुनिया में, जहाँ देखो वहीं, ऊपरी टीम-टाम और ढोंग-ही-ढोंग देख पड़ता है। पुराने ख़ानदानी अपनी मर्यादा के मद में चूर होकर सारे संसार और जाति को अपने आगे तुच्छ समझते हैं। कोई समय था, जब ये भी श्रीमान् और संपत्तिशाली थे ; पर अब तो भोजनों के भी लाले रहते हैं। फिर भी ऐंठ नहीं जाती। अच्छे-अच्छे काम करने से पूर्व-पुरुषों का संसार में नाम हुआ था। अब ये लोग निरक्षर होने पर भी अपने पुरखों के बड़प्पन की कोरी डींग मारते हैं। वास्तव में घमंड के सिवा इनमें और कुछ नहीं है। सर्व-साधारण जनता को ये बिलकुल तुच्छ समझते हैं, और सदा उनसे दूर रहने की चेष्टा करके अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने की फ़िक्र में रहते हैं। इनके ये अनोखे काम देखकर यदि कोई हँसे, तो दूसरी तरफ़ एक विचित्र दृश्य देख पड़ता है। आज तक जिनकी गणना सर्व-साधारण में होती आई है, ऐसे व्यक्ति यदि उद्योग, व्यवसाय, अधिकार अथवा और किसी प्रकार से बहुत मालदार हो गए हैं, तो अब उनको कुलीन बनने की धुन सवार हो गई है—वे अब जनता से

अपनेको अलग कर विशेष दल के अंतर्गत बनने की फ़िक्र में हैं। द्रव्य ने इन लोगों को अंधा कर दिया है, इस-लिये इनके सिर पर पुश्तैनी सरदार बनने की धुन आठ पहर चौंसठ घड़ी सवार रहती है। इस मोह के वश में होकर ये ऐसे-ऐसे काम किया करते हैं, जिन्हें देख-सुन-कर लोग इनका उपहास करते हैं। ऐसे लोग पुराने कुलीनों में मिलने की इच्छा से कोई भी काम करने में आगा-पीछा नहीं करते। उन्हें तो सदा कुलीन बनने का नशा रहता है। उनकी सदा यही इच्छा रहती है कि उन्हें किसी पुराने सरदार-ख़ानदान का मुखिया समझकर लोग उनकी इज़्ज़त किया करें। दोनों दलों में मिथ्याभिमान का पिशाच द्वंद्व मचाए हुए है। असल में इन दोनों दलों में भेद क्या है? जो घराने इस समय अच्छे ख़ानदानी, पुश्तैनी और प्रतिष्ठित समझे जाते हैं, उनके पूर्व-पुरुष किसी समय बिलकुल ही साधारण दशा में थे। उन्होंने द्रव्य, उद्योग, अधिकार अथवा और किसी साधन के द्वारा साधारण श्रेणी से निकलकर श्रेष्ठता प्राप्त कर ली— नाम कमा लिया; और तब वे कुलीन कहलानेवालों के दल में ज़बरदस्ती घुस गए। अब यदि कोई उसी नीति का सहारा लेने लगता है, तो सब लोग उस बेचारे का मज़ाक़ करते हैं, सभी उसकी अवहेला करते हैं। उसे रँगे सियार की उपमा दी जाती है, तरह-तरह से

उसकी दिल्लगी उड़ाई जाती है। परंतु समाज इस बात पर ज़रा भी ध्यान नहीं देता कि इन लोगों का आज जैसा उपहास किया जाता है, वही हाल एक दिन उन लोगों का भी हुआ था, जिनके घराने आज प्रतिष्ठित समझे जाते हैं। बड़े कहलानेवाले सभी घरानों के मुखियों ने एक दिन ऐसी ही कठिनाइयों का सामना किया था। वर्तमान समय में कुलीन माने जानेवाले घरानों के मुखियों की एक दिन समाज ने ऐसी ही दशा की थी, जैसी आज-कल कुलीनता—श्रेष्ठता—के उम्मेदवारों की हुआ करती है। परंतु कुछ ही समय में उनके करतब को भूलकर, उनकी असलियत को भूलकर, लोग उन्हें प्रतिष्ठित सम-झने लग गए। संसार में ऐसा ही सदा और सब जगह हुआ है। कुलीनता के वर्तमान उम्मेदवारों की भी कुछ दिनों में यही दशा होगी। कुछ दिनों के बाद ये भी कुलीन और अच्छे ख़ानदानवाले मान लिए जायँगे। हज़ारों साल का इतिहास और अनुभव जब इस बात को पुकारकर कह रहा है, तब आजकल के कुलीन कहलानेवाले लोग उनका उपहास क्यों करते हैं, जो अच्छे ख़ानदानी या कुलीन बनने का उद्योग कर रहे हैं? उनसे दूर रहने में ये कुलीन लोग अपना गौरव क्यों समझते हैं? यदि संसार का उक्त नियम न होता, तो आज यह संसार रहता या नहीं—यह नहीं कहा जा सकता। दूसरी बात प्रायः

यह देखी जाती है कि इन अच्छे ख़ानदानी और श्रेष्ठ कुलवालों के आचरणों की अपेक्षा सर्व-साधारण का आचरण कहीं उच्च रहता है। कुलीन और ख़ानदानी घरानों में जो अनाचार हुआ करते हैं, उनका स्मरण करने ही से रोएँ खड़े हो जाते हैं। साधारण घरानेवालों की नीतिमत्ता, आचरण और व्यवहार बहुत अच्छा और प्रायः निर्दोष देखा जाता है। यदि ख़ानदानी लोग दूसरों के गले काटें, मनमाने काम करें, वेश्याओं तक को घर में डाल लें, तो भी उनकी कुलीनता में बट्टा नहीं लगता! मानो कुलीनता का ठेका विधाता ने इन्हीं को दे रक्खा है। बड़प्पन और कुलीनता की ओट में ये लोग कितने ही उच्छृंखल काम और अनाचार क्यों न करें, उनसे समाज में इनकी प्रतिष्ठा ज़रा भी नहीं घटती। और लोगों की बात जाने दीजिए, एक मेरा ही उदाहरण लीजिए। किसी से मैं किस फ़न में कम हूँ? दुनिया में ऐसा कौन बुरा काम है, जो मैंने एकआध बार नहीं किया? सौ-पचास कोस के बीच में शायद ही ऐसा कोई आदमी होगा, जो मेरे गुणों को पूर्ण रूप से जानता और स्पष्ट कहने की हिम्मत रखता हो। न-जाने कितनी बोतलें ख़ाली करके मैंने अपने कंठ को सुरा से सींचा है। लोगों को झाँसे दे-देकर मैंने वे खेल खेले हैं, जिनका नाम! इतना सब होने पर भी मेरे घराने की उच्चता में—कुलीनता में—ज़रा-

सा भी धब्बा नहीं लगा। यही क्यों, रावबहादुर गिरधारीसिंह-जैसे उच्च कुल की प्रतिष्ठा के भूखे लोग मुझे अपनी लड़की देने में अपना गौरव मानते हैं। इस अवस्था में मैं अपना निशाना ख़ाली क्यों जाने दूँ? गुसाईं-जी ने ठीक कहा है—

"सुर, नर, मुनि सबकी यह रीती, स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती।"

ऐसे ही आँख के अंधे और गाँठ के पूरे मालदारों के बदौलत हम लोग गुल-छर्रे उड़ाया करते हैं, मन-माना आनंद लूटते हैं। हमें क्या पड़ी है, जो उस पर दया करें? इस गिरधारीसिंह का स्मरण आते ही मैं हँसी के मारे लोट-पोट हो जाता हूँ। इसे सरदार बनने की अभिलाषा ने बिलकुल ही पागल बना रक्खा है। इसको हमेशा यही धुन सवार रहती है कि यह किसी तरह सरदार कहलाने लगे। कोई ठिकाना नहीं कि यह सरदार बनने की धुन में कब क्या कर बैठे? अब मुझे अपना दामाद बनाना चाहता है। इसका यह प्रयत्न केवल इसीलिये है कि ऊँचे ख़ानदान में बेटी ब्याह देने से लोग यह समझने लग जायँ कि यह भी कोई ख़ानदानी रईस है। पर इस मूर्ख को यह नहीं सूझता कि जब लड़की ने अपने हृदय-सिंहासन पर किसी और को ही स्थान दे रक्खा है, तब, उसकी इच्छा के विपरीत, ज़बरदस्ती ब्याह कर देने से कैसा भयानक अनर्थ होगा। इसके सिवा, इस रावबहादुर

ने ब्याह की पक्की बात-चीत करके विष्णुलाल के यहाँ फलदान भी तो कर दिया है। पर अब इसे अपनी बात की भी कुछ पर्वा नहीं। सरदार बनने की लालसा से यह तो बुरे से भी बुरा काम करने के लिये तैयार है। ऐसी अवस्था में फलदान लौटा लेना इसके लिये क्या बड़ी बात है ? पर बच्चाजी, वचन-भंग करने का पातक तुम तो कर ही चुके; किंतु मैं ऐसा अधम नहीं कि दो प्रेमियों के आशा-तंतु को तोड़कर प्रेम-भंग का पातक करूँ। माना कि मालती सुंदरी है, सुशिक्षिता है, और गुणवती है। यह भी सच है कि उसमें ऐसी कोई बात नहीं, जो मुझे पसंद न हो। सब लोग उसके चाल-चलन और स्वभाव की प्रशंसा करते हैं। ये सब बातें सच हैं, और यदि मेरा मन कहीं और आसक्त न हो गया होता, और उस दशा में मालती मुझे प्रेम की दृष्टि से देखने लगती, तो मैं अवश्य ही बड़ी प्रसन्नता से उसका पाणि-ग्रहण कर लेता। परंतु यहाँ तो सभी बातें प्रतिकूल हैं। वह हृदय से विष्णुलाल को चाहती और मुझे तिरस्कार-पूर्ण दृष्टि से देखती है। इससे भी अधिक महत्त्व का और असल कारण यह है कि मैं रामबाई को अपना हृदय सौंप चुका हूँ। मैं रायबहादुर को झाँसे दे रहा हूँ, और वह उल्लू मेरी बातों को बिलकुल ही सच समझता है। हाँ, मेरे असली मतलब को जो मालती ने ताड़ लिया हो, तो ताड़ लिया हो। वह चतुर

लड़की मेरे मतलब को क्या अभी तक न समझ सकी होगी कि इस कृत्रिम प्रेम (जो मैं उस पर प्रकट किया करता हूँ) और असल प्रेम में बहुत अंतर है। यद्यपि वह मेरा साफ़-साफ़ अपमान किया करती है, तथापि मैंने उस बछिया के ताऊ रावबहादुर को अच्छी तरह विश्वास करा दिया है कि मैं मालती ही से ब्याह करूँगा। उसे यह भी विश्वास करा दिया है कि रामबाई तुम्हें हृदय से चाहती है, अतएव उसका पुनर्विवाह भी तुम्हारे ही साथ होगा। अरे मूर्ख गिरधरिया, तू इसी तरह ओठ चाटता रह जायगा! अगर तुझे मुँह के बल न गिराऊँ, तेरी भरपूर फ़ज़ीहत न करूँ, तो मेरा नाम नहीं। रामबाई-जैसी वरांगना तेरे-जैसे बंदर को अपने दरवाज़े पर फटकने भी न देगी। फिर, मैं ही ऐसी कोशिश क्यों करने लगा, जिससे वह रत्न तुझे मिल जाय? जो वह तुझे मिल जाय, तो यही कहना होगा कि—

"ज़ाग़ की चोंच में अंगूर ख़ुदा की क़ुदरत ;
पहलु-ए-हूर में लंगूर ख़ुदा की क़ुदरत।"

सच तो यह है कि रामबाई का ब्याह पहले मेरे ही साथ होनेवाला था, और वह भी मुझे चाहती थी। जब मैं लड़कपन में ननिहाल में था, तब उससे मित्रता हो गई थी। मेरी माता ने भी यही कहा था कि 'इसी लड़की को अपनी बहू बनाऊँगी।' पर रामबाई के

और मेरे अभाग्य ने आड़े आकर माताजी को संसार में रहने ही न दिया। हाय रे काल, तेरी कुटिल चाल ने न-जाने कितनों का घर घाला है। मा के मरते ही मेरे मनभाए ब्याह में विघ्न पड़ गया। जब रामबाई ब्याह के योग्य हुई, तब उसके पिता ने मेरे चाचाजी से ब्याह करने का बार-बार आग्रह किया; पर मक्खीचूस चाचाजी किसी तरह राज़ी न हुए! वह ऐसी लड़की को अपनी बहू नहीं बनाना चाहते थे। वे तो ऐसी बहू का स्वागत करना चाहते थे, जो उनके घर में सोने-चाँदी की वर्षा करती आवे। रामबाई-जैसी साधारण घर की, सुंदरी एवं सुशीला कन्या के साथ वह अपने भतीजे का ब्याह करने को किसी तरह राज़ी न हुए। मैंने भी बहुतेरा आग्रह किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि आज मुझे बे घर-द्वार का हो जाना पड़ा। अंत को रामबाई के पिता ने, लाचार होकर, लखनऊ में माधवप्रसाद के साथ शादी कर दी। इस घटना को चार वर्ष के लगभग हो गए। मैंने जब रामबाई को देखा था, तब वह सात-आठ वर्ष की थी। अब यद्यपि मैंने उसे आठ-दस साल से नहीं देखा, तथापि उस पर जो मेरा प्रेम एक बार हो गया है, वह डिगने का नहीं। उसका ब्याह हो जाने पर जब मुझे विश्वास हो गया कि अब उसके साथ मेरा ब्याह नहीं हो सकता, तब मैं बहुत उदास हो गया। मैंने निश्चय कर लिया था कि जब तक संसार में रहूँगा,

ब्याह नहीं करूँगा—आजन्म क्वाँरा ही रहूँगा। किंतु यह प्रतिज्ञा कर लेने पर भी मूर्ख चित्त ने उदासी का साथ नहीं छोड़ा। इससे बचने के लिये मैंने सुरा-देवी की आराधना आरंभ कर दी। मेरे बहँक जाने का—कुपथ पर चल पड़ने का—यही तो कारण है। यदि यह वियोग न होता, तो मैं क्यों सुरा-देवी का उपासक बनता! हाय रे धन! तूने मुझे कहीं का न रक्खा! इससे अकेला मैं ही दुखी नहीं रहा, बल्कि, लाचारी से मा-बाप के ब्याह कर देने पर भी, बेचारी रामबाई को भी सुख न हुआ। उसका भाग्य भी मेरी ही तरह फूटा निकला। ब्याह के दूसरे ही दिन बेचारे माधवप्रसाद को, किसी ज़रूरी काम से, किसी दूसरे शहर में जाना पड़ा, और वहीं अकस्मात् उसका देहांत हो गया। बेचारी रामबाई जानती ही नहीं कि पति का सुख कैसा होता है। वह झूठमूठ की विधवा है। यद्यपि कहने-भर के लिये उसका ब्याह हो गया था, पर वह इस समय भी वैसी ही है, जैसी कि ब्याह से पहले थी, यानी वह अब भी क्वाँरी ही है। बेचारी मुफ़्त में विधवा कहलाती है। यह सरासर अंधेर है। उसका ब्याह हुए चार वर्ष हो गए। अब उसकी उमर २० वर्ष के लगभग होगी। उसे मैंने बचपन में देखा था। अब न-जाने वह कितनी सुंदरी हो गई होगी। यदि मैं अब उससे मिलूँ, तो वह मुझे पहचान सकेगी या नहीं, इसमें भी संदेह है। माधवप्रसाद नाम-

मात्र के लिये पति बनकर उस निरपराध बेचारी को वैधव्य का दुःख तो दे गए, पर उसका बदला भी पूरा-पूरा चुका गए हैं। वह नामी ज़मींदार थे। उनके बाद उनकी ज़मींदारी की मालकिन यही रामबाई हुई है; क्योंकि उनका और कोई वारिस न था। वैधव्य की दशा में चार वर्ष बिताकर रामबाई इस साल लखनऊ आई है। मैंने सुना है, यहाँ वह दुबारा ब्याह करने की इच्छा ही से आई है। और, असल में भलाई है भी इसी में कि रामबाई-जैसी परमा सुंदरी धनी महिला अपना पुनर्विवाह करके संसार का सुख भोगे। इसमें संदेह नहीं कि आजकल हमारे देश और समाज में बड़ा अंधेर मचा हुआ है। जो स्त्री-पुरुष गुप्त रूप से अनेक प्रकार के पाप किया करते हैं, उन्हीं को समाज सच्चा, सदाचारी और पवित्र मानता है। परंतु यदि रामबाई-जैसी बाल-विधवा प्रकट रूप से किसी भले आदमी के साथ ब्याह करके पाप की जड़ पर कुल्हाड़ी चलाना चाहे, तो लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं, उसकी दिल्लगी उड़ाते हैं। क्या यह अंधेर नहीं है? मैं तो इसे सरासर ज़ुल्म समझता हूँ। यदि रामबाई सचमुच अपना ब्याह किया चाहती है, तो मैं बिलकुल तैयार हूँ। इसके लिये मानापमान की मुझे रत्ती-भर भी पर्वा नहीं है। अजब नहीं कि हमारे प्रेम की शिथिल शृंखला को फिर से सुधार देने के लिये ही विधाता ने यह लीला रची

हो। चाचा साहब ने तो मुझे फूटी कौड़ी भी नहीं दी। इस समय मेरे पास एक पाई तक नहीं है। कदाचित् परमेश्वर का यही संकेत हो कि माधवप्रसाद की धन-दौलत लेकर रामबाई धनवान् हो जाय, और तब उसके साथ मेरा ब्याह हो। शायद ईश्वर इसी तरह से मेरे दिन सुधारना चाहता हो। दारिद्र्य-दहन का यह उपाय विधाता की दया का अपूर्व परिचय दे रहा है। परंतु इस प्रकार मन-मोदक खाने से कुछ लाभ होने की आशा नहीं। जिसके लिये मैं इतना उत्सुक हो रहा हूँ, वह भी यदि मेरे लिये ऐसी ही उत्सुक हो, तभी सब काम सिद्ध है। किंतु इसका मुझे पता कैसे लगेगा? उसके निश्चय का पता लग जाय, तो फिर मैं या तो सदा सुख की नींद सोया करूँगा, या प्रचंड वियोगाग्नि में जलता रहूँगा। बहुत दिनों से मेरी इच्छा है कि उससे भेंट करके उसके मन की बात का पता लगाऊँ। अब हाथ-पर-हाथ रक्खे बैठे रहने में कोई लाभ नहीं। पहले पत्र लिख-कर उससे प्रार्थना करनी चाहिए कि मैं तुमसे भेंट करना चाहता हूँ। यदि भाग्यवश आशा-जनक उत्तर मिल जाय, तो फिर आगे की व्यवस्था का यथोचित विचार करना चाहिए। परंतु यदि उसने मेरे पत्र का तिरस्कार किया, तो? अँः, जो होना होगा, सो तो होगा ही, अभी से ऐसे अनिष्ट विचारों को हृदय-क्षेत्र में स्थान देना बुद्धिमानी का

काम नहीं है। उस सच्चिदानंद पर भरोसा रखकर उद्योग करना मनुष्य का काम है। फिर भाग्य में जो लिखा होगा, वही होगा।

[पत्र लिखने के लिये बैठक में जाता है

तीसरा दृश्य

स्थान—नेतराम का घर

[वृद्ध नेतराम चश्मा लगाए तकिए के सहारे बैठे हैं। डेस्क पर बहीखाता रक्खे मुनीम जमा-ख़र्च लिख रहा है]

नेतराम—(दो-तीन चुटकी हुलास सूँघकर दुपट्टे से नाक पोंछता हुआ) क्यों भई रामदास, तुम यह कर क्या रहे हो? मैं बड़ी देर से देख रहा हूँ, तुम बेकार क़लम को तराश-तराशकर ख़राब कर रहे हो। इस तरह तो तुम मुझे बहुत जल्द दिवालिया बना दोगे! और, उस आशाराम ने तो मेरा तमाम रुपया-पैसा पानी की तरह बहा ही दिया। अच्छा हुआ, जो मेरी आँखें जल्द खुल गईं!—क्यों जी, तुम्हें वह कहीं मिला था?

रामदास—जी हाँ, मैंने उन्हें परसों सुधारकों की मीटिंग में देखा था। वर्तमान सुधार के कामों में वह तन-मन से लगे हुए हैं।

नेतराम—हाँ, उसके साथ और कौन-कौन था?

रामदास—रावबहादुर गिरधारीसिंह तो उनके जिगरी दोस्त हैं। वह बेहद रुपए-पैसे खर्च किया करते हैं। और भी कुछ खबर मिली है आपको?

नेतराम—अजी रामदास, जब तक तुम मुझसे बात-चीत करते हो, तब तक दीये का तेल क्यों मुफ़्त जला रहे हो। पहले दीवे को ठंडा कर दो। जब लिखने लगो, तब फिर उजेला कर लेना, मैं कुछ न कहूँगा। इस तरह फ़िज़ूलख़र्ची करने से तो बहुत ही जल्द दिवाला निकल जायगा! समझे कि नहीं? (रामदास दीवे को बुझाता है) अच्छा, अब कहो, क्या कहते थे? उस नालायक़ के बारे में तुमने क्या-क्या सुना है?

रामदास—सुना है, उन सुधारकों की बातों में आकर छोटे मालिक किसी विधवा से ब्याह करनेवाले हैं। आज-कल बस्ती में जहाँ-तहाँ यही चर्चा फैली हुई है।

नेतराम—क्या कहा, विधवा-विवाह करनेवाला है? ऐसी विधवा है कौन, जिस पर वह मरा जाता है?

रामदास—वही माधवप्रसाद की विधवा रामबाई।

नेतराम—(क्रोध से) अरे, उस दुष्ट ने हमारी सात पुश्त की इज़्ज़त बरबाद कर दी—कुल में कलंक लगा दिया—हाय-हाय!

रामदास—सुन पड़ता है, रामबाई के पास लाखों का

माल और संपदा है। उसके साथ ब्याह कर लेने पर छोटे मालिक मनमाने रुपए फूँककर मौज कर सकेंगे। अप-राध क्षमा किया जाय, मैं तो यही समझता हूँ कि आपने उन्हें घर से निकाल दिया है, इसी से उन्होंने यह रास्ता पकड़ा है। (इतने में द्वारका रसोइया आता है)

नेतराम—क्यों महराज, क्या है ?

द्वारका—सरकार, आज दोपहर को नवाबगंज से मेह-मान आनेवाले हैं। उनके लिये क्या बनाया जाय ? कौन-कौन-सी मिठाई बनाई जायगी ? यही पूछने आया हूँ।

नेतराम—(मुनीम दीवा जलाता है। पाँच-छः दियासलाइयाँ जला डालने पर भी जब दीवा न जला, तब नेतराम ने हाथ हिलाकर कहा) अरे रामदास, मैंने तुझे कितना समझाया; पर तू अपने ही मन की करता है, मेरी एक भी नहीं सुनता। तूने तो मेरा दिवाला निकाल देने पर कमर कस रक्खी है। जो तू इसी तरह दियासलाइयाँ फूँकता रहेगा, तो मुझे बहुत जल्द भीख माँगने की तैयारी करनी पड़ेगी ! (स्वगत) मैंने न-जाने कितने कष्ट सहकर यह प्राणों से प्यारी दौलत जमा की है। ये साले पाहुने मुफ़्त में मेरी नाक में दम करने आया करते हैं। क्या इन्हें अपने घर में कुछ भी कामकाज नहीं है ?

द्वारका—तो सरकार, मुझे क्या हुक्म होता है ?

नेतराम—घर में जाकर कह दे कि अच्छे-अच्छे क़ीमती कपड़े अरगनी पर फैला दे। (स्वगत) मेरे यहाँ क़ीमती कपड़े हैं ही कहाँ? ख़ैर, जो हैं, वे ही सही। इससे मेहमान यही समझेंगे कि इनके यहाँ ऐसे ही अच्छे-अच्छे कपड़े नित्य पहने-ओढ़े जाते हैं।

द्वारका—मालिक, यह तो सब होगा ही, पर आपने रसोई के बारे में कुछ नहीं बतलाया कि कौन-कौन-से पदार्थ बनाए जायँ।

नेतराम—फिर वही बात! तुम रसोइयों को देखने से मेरा ख़ून सूख जाता है। रसोइया तो फ़िज़ूल-ख़र्ची का मूर्तिमान् अवतार है!

द्वारका—तो फिर सरकार, मुझे नौकर ही किसलिये रक्खा? मुझे तो आपने एक भी दिन मौक़ा नहीं दिया कि मैं अपना जौहर तो आपको दिखला देता। देखिए, मैं कोई ऐसा-वैसा रसोइँया नहीं हूँ। वैद्यराज से मेल-जोल बढ़ाकर मैंने आपको कभी सड़ी-गली तरकारी, बुरा क़लिया अथवा और कोई ख़राब चीज़ नहीं खिलाई। मैं ऐसा रद्दी रसोइँया नहीं हूँ कि कुत्ते की ख़राब पूँछ का शोरवा खिलाकर अपने मालिक को बीमारी के हवाले कर दूँ। मुझे स्मरण नहीं कि मैंने कभी गेहूँ के आटे में ज्वार का आटा मिलाकर आपको ठंडी पूरियाँ खिलाई हों। मैं रसोई की वे तरकीबें जानता हूँ, जिन्हें जाननेवाले उस्ताद

बहुत कम होंगे। इन मसालों को चखने के लिये इंद्र आदि देवता भी तरसते हैं। पर मुझे आप ऐसा मौक़ा देते ही नहीं कि कभी अपने हाथ का करतब तो आपको दिखला दूँ। मैं ऐसी चीज़ें बनाता हूँ कि उनकी याद करने से मक्खीचूस के भी मुँह में पानी आ जाता है! जिसने मेरे हाथ का बनाया हुआ उमदा गोश्त, भुनी हुई मछलियाँ और मसालेदार शोरबा एक बार भी चख लिया है, वह उनके स्वाद को सौ जन्म तक नहीं भूल सकता।

नेतराम—पत्थर पड़ें तेरे मुँह पर, और आग लगे तेरी बातों में!

द्वारका—मालिक, आप यह क्या कहते हैं? जो मैं मर जाऊँगा, तो बड़े-बड़े देवतों तक को भूखे रहना पड़ेगा!

नेतराम—(हँसकर) तो क्या तू देवतों को थाली परोसे बैठा रहता है?

द्वारका—हाँ सरकार! जब मैं चूल्हे पर तरकारियाँ छौंकता हूँ, तब भाप के साथ अच्छी-अच्छी चीज़ों की जो खुशबू बाहर निकलती है, उसी से देवतों का पेट भर जाता है। और, आपके यहाँ तो मुझे भी उसी सुगंध से अपनी भूख शांत करनी पड़ती है।

नेतराम—मगर जिस दिन व्रत होता है, उस दिन तेरे देवतों का पेट किस तरह भरता है?

द्वारका—उस दिन तो उन बेचारों को भी निराहार

रहना पड़ता है। जब वे मुझे स्वप्न में दर्शन देते हैं, तब उनके दुबले-पतले शरीर देखकर मुझे बड़ी दया लगती है। इसी से, जिन शास्त्रकारों ने उपवास करने की प्रथा चलाई है, उनको बुरा-भला कहे बिना मुझे कल नहीं पड़ती।

नेतराम—अच्छा, तेरी बातों का कुछ अंत भी है? यह राँड़ का-सा चर्खा कब तक चलाता रहेगा?

द्वारका—सरकार, थोड़ा-सा और कहना है। बस, फिर मैं चला। छोटे मालिक तो बस्ती-भर में आपकी निंदा करते फिरते हैं।

नेतराम—(अधीर होकर) क्या कहा? वही आशाराम!

द्वारका—जी हाँ सरकार। उनके दोस्त बिशनलाल का नौकर—भगुआ—मुझे परसों मिला था। आप यद्यपि इतने बड़े दानी और उदार हैं, फिर भी वह घंटों तरह-तरह से आपकी निंदा करके कहता था कि वह बड़े मक्खीचूस-कंजूस हैं।

नेतराम—अच्छा, वह हरामी, सुअर का बच्चा और क्या-क्या कहता था?

द्वारका—जब आप सारी बातें सुनने का आग्रह कर रहे हैं, तब मुझे सब हाल कहना ही पड़ेगा। अच्छा, सुनिए। भगुआ कहता था कि बिना आपकी निंदा किए छोटे मालिक को रोटी हज़म नहीं होती! वह कहता था कि आपने ज्योतिषी से एक ऐसा पंचांग बनवा रक्खा है,

जिसमें एकादशी, प्रदोष, गणेश-चतुर्थी आदि व्रत करने की तिथियाँ बहुतायत से हैं। आप एक कर्मनिष्ठ धर्मात्मा पुरुष हैं, इससे आप सभी व्रत किया करते हैं, और यही कारण है कि घरवालों को, इच्छा न रहने पर भी, उपवास करने पड़ते हैं। मज़ा यह कि व्रत में आप फलाहार करना-कराना ठीक नहीं समझते। इस प्रकार महीने-भर में पंद्रह दिन तो आप निराहार रहकर ही बिता देते हैं। मतलब यह कि आप हर तरह किफ़ायत से चलते हैं। वह यह भी कहता था कि जब कोई त्योहार आता है, तब आप कोई नाहक़ का झगड़ा खड़ा करके घरवालों का दिल खट्टा कर देते हैं, जिससे चूल्हा ही नहीं सुलगता। तब रसोई ही क्योंकर बनेगी? ऐसा होने से नौकरों-चाकरों को इनाम-इक़राम माँगने की भी हिम्मत नहीं होती। उसने यह भी कहा था कि आपने दीवारों में सड़क की तरफ़ बड़े-बड़े छेद करवा लिए हैं, जिसमें सरकारी लालटेनों की रोशनी घर में आ जाया करे। इस प्रकार आपने तेल-बत्ती की बचत कर ली है। सरकार, क़सूर माफ़ हो, वह कहता था कि एक बार आप तबेले में घोड़े का दाना चबाते देखे गए थे, और साईस ने उसके लिये आपकी मरम्मत भी की थी। एक बार किसी पड़ोसी की बिल्ली आपकी रोटी खा गई थी, सो आपने कोतवाली में इसकी रिपोर्ट लिखवाई थी। हुज़ूर, उसने ऐसी-ऐसी

न-जाने कितनी बातें कही हैं। वह कहता कि जब आपको कहीं दूर जाना पड़ता है, तब आप जोड़े पर दया कर उसे इसलिये हाथ में ले लेते हैं कि कहीं इसकी तली न घिस जाय। आप नंगे पैरों मज़े में चले जाते हैं। मैं जो उसकी कही सारी बातें सुनाने लग जाऊँ, तो एक पोथा बन जाय। आपके नाम के साथ मक्खीचूस, कंजूस, मूँजी, लोभी, लालची आदि विशेषण लगाए विना छोटे मालिक एक दिन भी नहीं मानते।

नेतराम—(क्रोध से आग-बबूला होकर) चुप रह बदमाश, पाजी कहीं का! आज उस हरामी को वह मज़ा चखाऊँगा, जिसका नाम! जो मैं ऐसा न करूँ, तो मेरा नाम नेतराम नहीं। मगर, अरे नालायक़, ऐसी बातें करने में तुझे शरम नहीं लगती—

[द्वारका को मारने दौड़ता है, वह भागता है नेतराम गाली-गलौज करता हुआ उसके पीछे-पीछे जाता है

चौथा दृश्य

स्थान—रामबाई की बैठक

[रामबाई की दो सहेलियाँ—गजरा और तारा—उससे बात-चीत कर रही हैं]

गजरा—क्यों बहन, तुमने 'चतुर गृहिणी' की फागुन की संख्या देखी है?

रामबाई—नहीं तो, तूने देखी है ?

गजरा—बहन, तुम तो मुझे बिलकुल ही अजान समझ पड़ती हो । तुम्हारी-जैसी रूपवती, धनवती बाल-विधवा को तो 'चतुर गृहिणी' का एक-एक शब्द पढ़ना चाहिए ।—क्यों बहन तारा, मैं ठीक कहती हूँ न ?

तारा—भला यह भी कहने की बात है ? मैं भी तो इसी पर इनका ध्यान दिलाना चाहती थी । अच्छा हुआ, मेरा काम तूने ही कर दिया ।

गजरा—तब तो मैंने मौक़े पर चर्चा छेड़ी है । फागुन की 'चतुर गृहिणी' में एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ है ! उसमें बड़े-बड़े अक्षरों में छपा है—"विधवा-विवाह के लिये तैयार !" अपने यहाँ तो उसके लिये एक उम्मेदवार पहले ही से है ।—तो इनके नाम से आवेदन-पत्र भेज दूँ ?

तारा—बेशक ! अच्छा होता, यदि उस विधवा-विवाह के उम्मेदवार का पूरा-पूरा परिचय पहले ही से मिल जाता । इससे ज़रा—

गजरा—अब और क्या परिचय चाहती हो ? अगर मेरी राय पूछो, तो बुड्ढा दूल्हा ही सबसे अच्छा होता है । देखो बहन, इस पद में भी यही बात कही गई है—

"हो बूढ़े की तरुणी नारी ; पत्नी हो पति, वर हो प्यारी ।"

रामबाई—(क्रोध प्रकट कर) तुम दोनों का मुँह बहुत बढ़ गया है । जाओ, अपना मुँह न दिखलाओ । तुम

बड़ी ढीठ हो गई हो। तुम्हारी ये बातें मैं नहीं सुनना चाहती।

तारा—(हँसकर) हुँः-हुँः, अब मैं समझी। सुना बहन गजरा, वह पद इन्हें पसंद नहीं। इन्हें तो यही रुचता है—

"गोरी दुलहिन के लिये भला साँवला मर्द !"

यही इन्हें पसंद है। (रामबाई से) क्यों सरकार, मैंने कैसा भाँपा ?

गजरा—हुँः-हुँः, मैं भूल गई थी बहन तारा, तुमने खूब ताड़ा ! वह, जो अभी-अभी नए-नए रावबहादुर हुए हैं, सचमुच श्यामसुंदर हैं—

रामबाई—फिर वही बात ! मैं तुमसे एक बार कह चुकी हूँ कि मुझे ऐसी बातें नहीं सुहातीं। मगर तुम फिर वही बके जाती हो। मेरे हृदय को वैधव्य की कठिन आँच ने पहले ही से जला रक्खा है, अब तुम उस पर नमक छिड़कती हो। ठीक है 'मरे को मारे शाह मदार !'

तारा—जान पड़ता है, तू इसी प्रकार जन्म गँवाकर रँड़ापे का दुःख भोगती रहेगी, और संसार में रह-कर भी उसके भोगों का आनंद न लूट सकेगी। निर्दय विधाता ने क्या तेरे भाग्य में यही लिखा है ?

[कल्लू आता है

रामबाई—(कल्लू से) क्यों रे, तू कहाँ से आया है ?

कल्लू—मालकिन, मैं उन अपने मालिक आशाराम की यह चिट्ठी—

रामबाई—(कुछ लज्जित होकर उठती और चिट्ठी ले लेती है। फिर आँचल में उसे छिपाकर कल्लू से कहती है) अच्छा, अब तुम जा सकते हो।

[कल्लू जाता है

गजरा—क्यों बहन, क्या मामला है ? कुछ समझ में न आया।

रामबाई—बहन गजरा, तुम्हारा कहना सच है। इस गोरखधंधे को मैं भी समझ नहीं सकी।

तारा—बहन गजरा, तू तो बहुत पूछ-ताछ कर रही है। कुछ भी हो, तुझे क्या करना है ? (कान में कुछ कहती है) चलो, आज बड़ी देर हो गई, घर में कामकाज पड़ा होगा।

रामबाई—अभी इतनी जल्दी क्या है ? घर में ऐसा क्या कामकाज आ गया, जो ताराबीबी जाने के लिये इतनी जल्दबाज़ी कर रही हैं ! कोई ऐसी बात नहीं है, जो मैं तुमसे छिपाऊँ। परंतु—

गजरा—मैं समझ गई। आज तो जाती हूँ, कल फ़ुरसत के वक़्त फिर आऊँगी। तभी बात-चीत होगी।

[दोनों जाती हैं

रामबाई—अच्छा हुआ, जो अभी ये दोनों यहाँ से टल गईं। मुझे बड़ी उत्सुकता है। देखूँ तो भला, इस पत्र में क्या लिखा है। (जल्दी से पत्र खोलकर पढ़ती है) आहा, कैसा माधुर्य है! यदि उनके साथ मेरा व्याह हो गया होता, तो मेरे मन में पुनर्विवाह के विचार को स्थान ही न मिलता। मैं इस विचार से दूर रहने की हज़ार कोशिश करती हूँ, फिर भी वह मनोमोहनी मूर्ति मेरे हृदय-पटल से नहीं हटती। इसके लिये मैं क्या करूँ? देखो न, पत्र में पुनर्विवाह का किस खूबी से मंडन किया है कि कुछ कहते नहीं बनता। साथ ही मेरे मन को आकर्षित करने की चेष्टा भी की है! इस पत्र ने मुझे उन पुरानी बातों की बखूबी याद दिला दी, जो अब से चौदह-पंद्रह वर्ष पहले गाँव में हुआ करती थीं। उन बातों का स्मरण हो आने पर मेरा हृदय आनंद से पुलकित हो उठता है। आहा, कैसा अच्छा स्वभाव था! अब भी वह अपनी मधुर वाणी और मोहिनी मूर्ति से हर किसी को प्रेम के फंदे में फँसा लेते हैं। तभी तो लोगों में उनका इतना आदर-सम्मान है। उनके बारे में मौसी न-जाने क्या-क्या बकती रहती हैं; पर वह अभी तक यह नहीं जानतीं कि उनके भड़कने के क्या-क्या कारण हैं। उनके उस मक्खीचूस चाचा ने मेरे और उनके विवाह में दुष्टता-पूर्वक रुकावट डालकर जब से वियोग कराया,

तभी से वह पागल-से हो गए हैं। सुना है, एक बार तो विष खाकर प्राण दे देने को ही उद्यत हो गए थे ! ओफ़, मुझ पर उनका कितना दृढ़ प्रेम है ! इस पत्र में तो उन्होंने अपना कलेजा चीरकर रख दिया है। उन्हें इस बात की क्या खबर होगी कि मैं भी अनेक कष्ट सहती हुई उनके दर्शनों के लिये कैसी तरसती रहती हूँ ! परमेश्वर, मेरे हृदय की सारी बातें तू ही जानता है। उन्हें जो दारू पीने की लत पड़ गई है, क़र्ज़ के मारे बाज़ार में मुँह दिखाना मुशकिल हो गया है—सो सब मेरे वियोग ही का तो परिणाम है। मुझ पापिन के कारण उन्हें ये कष्ट झेलने पड़े हैं। इन व्यसनों से छुड़ाकर उन्हें पहले की-सी उत्तम दशा में कर देना मेरे लिये कुछ कठिन काम नहीं है—

सजनी—(प्रवेश करके) मालकिन, देबिन के दरसन करै का मउसी तयार बइठी हैं। तुमहूँ का बोलावति हैं। जल्दी चलउ।

[दोनों जाती हैं

[परदा गिरता है]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—रावबहादुर की लाइब्रेरी

[रावबहादुर हाथ में पुस्तक लिए कुर्सी पर बैठे हैं। आगे मेज़ पर दो-एक पुस्तकें रक्खी हैं।]

[शास्त्रीजी का प्रवेश

शास्त्रीजी—सरकार रावबहादुर साहब, आज तो आप पढ़ने में बिलकुल ही दत्त-चित्त हैं।

रावबहादुर—नहीं तो, मैं इस डिक्शनरी के पन्ने फाड़ रहा हूँ। गणपतिप्रसाद वकील ने कहा था कि इसमें सुंदर-सुंदर कथाएँ हैं। इसकी न्योछावर तीस रुपए देनी पड़ी है! वह कहते थे कि आप-जैसे रईसों की लाइब्रेरी में ऐसी पुस्तक अवश्य रहनी चाहिए। परंतु शास्त्रीजी, उस दिन आपको झगड़े में पिटते देखकर मुझे बड़ा खेद हुआ। उसका मुझे अब तक दुःख है। वे बड़े मूर्ख हैं, विद्या का माहात्म्य क्या जानें!

शास्त्रीजी—विषयांतर आप क्यों करते हैं! उन गर्दभों की चर्चा छोड़िए। शास्त्र का वचन है—

"अहो दुर्जनसंसर्गान्मानहानिः पदे पदे ;
पावको लौहसंगेन मुद्गरैरभिहन्यते ।

रावबहादुर—आहा, कैसा अच्छा उपदेश है ! हाय, मेरे माता-पिता ने मुझे शास्त्र का अध्ययन नहीं कराया। मेरी तो बहुत कुछ इच्छा थी कि इस धरातल पर जितना भी ज्ञान प्राप्त हो सके, वह सब बटोरकर इकट्ठा कर लूँ ; किंतु कुछ कर न सका।

शास्त्रीजी—इसे अहोभाग्य समझना चाहिए कि इस उत्तम इच्छा ने आप-जैसे उदारचेता पुरुष के हृदय में स्थान प्राप्त किया था। इसमें रत्ती-भर भी संदेह नहीं। कहा भी है—

"आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ;
ज्ञानं हि तेषामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ।"

ठीक है, यदि ईश्वर को स्वीकार होगा, तो मैं आपकी इच्छा को पूर्ण करूँगा।

रावबहादुर—परंतु मैं तो बिलकुल ही अज्ञान हूँ।

शास्त्रीजी—जिसे ज्ञान नहीं, वह साक्षात् पशु है। क्योंकि भर्तृहरिजी की तो यही राय है कि—

"साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।
तृणन्न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ।"

रावबहादुर—आपका कथन बहुत ही ठीक है।

शास्त्रीजी—ज्ञान प्राप्त करने के लिये आप विशेष

उत्कंठा व्यक्त कर रहे हैं; परंतु आपको अभ्यास कराने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि आपने कहाँ तक शिक्षा पाई है, जिसमें उसके आगे आपको अध्ययन कराया जाय। (आलमारी की ओर उँगली से दिखलाकर) ये ग्रंथ तो आपने सभी देख लिए होंगे ?

रावबहादुर— (सिर खुजलाकर) मेरे अध्ययन के संबंध में आप यही समझ लीजिए कि मैं मामूली लिखना-पढ़ना जानता हूँ। रामनगर के पंडित गणपतिप्रसादजी वकील एक प्रसिद्ध विद्वान् हैं। वह मेरे मित्र भी हैं। उन्होंने कहा है कि इस नई पुस्तक के पन्ने फाड़कर दुरुस्त कर रक्खो। वह इसे आद्योपांत पढ़कर ऐसे स्थानों पर चिह्न लगा देंगे, जो मेरे पढ़ने लायक़ होंगे। उनकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा है। इससे मुझे सारी पुस्तक पढ़ने का कष्ट न उठाना पड़ेगा। और, यदि हम रईस लोग सारी पुस्तकें पढ़ने लग जायँ, तो फिर हमारा बड़प्पन ही कहाँ रहे ? हाँ हमें अपनी प्रतिष्ठा के लिये बड़ी-बड़ी क़ीमती पुस्तकें अवश्य लेनी पड़ती हैं। पुस्तकें ख़रीदकर इस आलमारी में रखवा देता हूँ, और समय-समय पर अपने इष्ट-मित्रों को पढ़ने के लिये दे देता हूँ। वे कभी-कभी मुझे पुस्तकें लौटा भी देते हैं।—

शास्त्रीजी—वाह, क्या कहना है ! विद्या-व्यासंग इसका नाम है ! आपका कथन सर्वथा यथार्थ है। अब यह

बतलाइए कि आपको किस विषय का अध्ययन करना है ? क्या आप तर्क-शास्त्र में पारंगत होना चाहते हैं ?

रावबहादुर—तर्क-शास्त्र ? वाह शास्त्रीजी महाराज, खूब कहा ! क्यों न हो, यह शास्त्र सिखलाकर आप हमें कहाँ भेजने का विचार कर रहे हैं ?

शास्त्रीजी—यह आप क्या कहते हैं ? तर्क-शास्त्र बहुत ही उत्तम शास्त्र है । इसका अध्ययन कर लेने पर शास्त्रीय प्रणाली से प्रतिपक्षी के मत का खंडन किया जा सकता है । इसके सिवा बुद्धि भी पैनी होती है ।

रावबहादुर—नहीं महाराज, क्षमा कीजिए । मुझे ऐसा शास्त्र पसंद नहीं । मुझे कुछ और विद्या सिखलाइए, जिससे रावबहादुरी की शोभा बढ़े ।

शास्त्रीजी—यदि रावबहादुर साहब की इच्छा हो, तो मैं नीति-शास्त्र का पाठ पढ़ाने को तैयार हूँ ।

रावबहादुर—भई, बड़े अचरज की बत है ! मुझे आप नीति-शास्त्र पढ़ाने को कहते हैं ! मेरे सदृश उपाधि-धारियों को अब आप और क्या नीति सिखलाना चाहते हैं ? मैं अनीति ही क्या करता हूँ, जो आप मुझे नीति-शास्त्र पढ़ाने चले हैं ? शास्त्रीजी, मैं समझ गया । आप मेरी दिल्लगी उड़ा रहे हैं । अब मैं आपकी नीति-वीति नहीं पढ़ना चाहता ।

शास्त्रीजी—तो क्या आपको वेदांत का अनुशीलन करने की इच्छा है ?

रावबहादुर—(आश्चर्य-चकित होकर) वेदांत के माने ? बतलाइए, उसमें कैसी-कैसी कथाएँ हैं ?

शास्त्रीजी—उसमें सच्चिदानंद परमात्मा का विवेचन कर यह दिखलाया गया है कि 'ब्रह्म' 'एकमेवाद्वितीयम्' है। जीवात्मा अर्थात् अपना आत्मा और परमात्मा यानी परब्रह्म सब एक ही माया है—उसमें कुछ भेद-भाव नहीं। वेदांत-शास्त्र में पूर्ण रीति से उसके सार्वकालिक तादात्म्य का निरूपण किया गया है। माया और उपाधि, सत् और असत् प्रभृति समग्र बातों का वर्णन उस शास्त्र में है। उसमें लिखा है कि यह सब संसार मिथ्या है, केवल अज्ञानवश सत्य प्रतीत होता है। यच्च यावत् उसमें सत्य ज्ञान यानी ब्रह्म-ज्ञान का विवरण किया—

रावबहादुर—आग लगे ऐसे ज्ञान में! पत्थर पड़ें ऐसी ज्ञान-चर्चा पर! यह ब्रह्म-ज्ञान नहीं, यह तो प्रवंचना है—प्रवंचना!

शास्त्रीजी—तो फिर सरकार, मैं आपको और सिखलाऊँ ही क्या ?

रावबहादुर—अच्छा सच बात कहूँ ? आप मुझे चिट्ठी-पत्री लिखना सिखलाइए।

शास्त्रीजी—(विस्मित होकर) बहुत अच्छा। जो सरकार की आज्ञा हो, मुझे स्वीकार है। चिट्ठी-पत्री लिखने की रीति सिखलाने के पहले आपको शुद्ध लेखन के संबंध

में थोड़ा-बहुत ज्ञान हो जाना चाहिए। अभी मैं वर्ण-विचार-संबंधी कुछ नियम बतलाता हूँ। वर्ण-विचार में वर्णों और उनसे उत्पन्न अक्षरों का विचार है। 'अ' से लेकर 'ज्ञ'पर्यंत जो ध्वनि होती है, उसको वर्ण-समुच्चय कहते हैं। वर्णों के दो भेद हैं, स्वर और व्यंजन। जिनकी सहायता से अक्षर सिद्ध होते हैं, वे स्वर कहलाते हैं; और स्वरों की सहायता के बिना ही जिनका उच्चारण होता है, वे व्यंजन कहे जाते हैं। 'अ' से लेकर 'अः' तक सोलह स्वर हैं। इनमें अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ये ह्रस्व हैं, और आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ, ये दीर्घ हैं। ए, ऐ, ओ, औ, संयुक्त स्वर हैं। 'अं' अनुस्वार है, और अः विसर्ग। सरकार यह तो जानते ही होंगे कि व्यंजन किसे कहते हैं।

रावबहादुर—(शीघ्रता से) क, ख, ग—

शास्त्रीजी—वाह, आपने बहुत ही ठीक उत्तर दिया। अच्छा, तो अब स्थान-विचार के नियम सुनिए। मुख के जिस भाग से जिस वर्ण का उच्चारण होता है, वह उस वर्ण का स्थान कहा जाता है। अच्छा, तो सरकार राव-बहादुर साहब, अब आप क, ख, ग का उच्चारण कीजिए।

रावबहादुर—क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ—

शास्त्रीजी—बस, बस, ठहरिए। अच्छा, अब यह बतलाइए कि इनका उच्चारण कहाँ से हुआ?

रावबहादुर—कान के नीचे से, (गर्दन के पास उँगली से दिखलाकर) यहाँ से।

शास्त्रीजी—परंतु उस अंग का क्या नाम है? नाम बतलाइए।

रावबहादुर—गला।

शास्त्रीजी—अर्थात् कंठ; और इनका उच्चारण कंठ से हुआ, इसलिये इनका कंठ-स्थान समझिए। अच्छा सरकार, अब प, फ, ब कहिए।

रावबहादुर—प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श—

शास्त्रीजी—ठहरिए-ठहरिए। अब यह बतलाइए कि इनका उच्चारण कहाँ से हुआ?

रावबहादुर—(मूछों की ओर संकेत करके) यहाँ से।

शास्त्रीजी—अर्थात् ओठों से। इसी से इनका स्थान ओष्ठ समझिए।

रावबहादुर—अजी पंडितजी, अब मैं अच्छी तरह समझ गया। अक्षरों के उच्चारण के स्थान मेरी समझ में आ गए। (स्वगत) शुद्ध लेखन-विद्या सीखने में भी बड़ा मज़ा है।

शास्त्रीजी—अब आप ओ, औ का उच्चारण कीजिए।

रावबहादुर—(ज़ोर से) ओ, औ, अं, अः, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ—

शास्त्रीजी—अच्छा-अच्छा, इनका उच्चारण किस स्थान से हुआ?

रावबहादुर—(टेढ़ा मुँह करके) मुँह की पोल से।

शास्त्रीजी—इसका कंठौष्ठ स्थान है। कारण, इनका उच्चारण कंठ और ओष्ठ दोनों के योग से होता है। याद रखिएगा।

रावबहादुर—धन्य है महाराज, आज मुझे न-जाने कितने ज्ञान की प्राप्ति हो गई!

शास्त्रीजी—अब आज का पाठ यहीं तक रहने दीजिए। कल तालु, दंत और नासिका-स्थान के संबंध में विचार किया जायगा।

रावबहादुर—तो क्या उनके सीखने में भी आज का-सा मज़ा होगा?

शास्त्रीजी—(जाने की तैयारी में दुपट्टा सँभालकर) यह न पूछिए। उसमें इससे भी अधिक आनंद है।

रावबहादुर—ओफ़! मेरे मा-बाप कैसे मूर्ख थे—अजी बिलकुल मूर्ख, गधे कहीं के। मुझे पालकर इतना बड़ा तो कर दिया, पर यह कुछ भी सिखाया-पढ़ाया नहीं। अच्छा शास्त्रीजी महाराज, आप मेरा एक छोटा-सा काम कर दीजिएगा? आज ज़रा ठहरकर घर जाइएगा—

शास्त्रीजी—सरकार, ऐसा क्या काम है? उसका नाम भी तो सुनूँ।

रावबहादुर—(शास्त्रीजी के कान में कहता है) मैं एक सुंदरी पर आसक्त हूँ। उसी को एक पत्र लिखना है।

शास्त्रीजी—अच्छा ! तो यह कहिए कि प्रेम-पत्र लिखना है।

रावबहादुर—पर बड़ी होशियारी से लिखना होगा।

शास्त्रीजी—बहुत अच्छा। पत्र गद्य में लिखा जायगा, या पद्य में ?

रावबहादुर—क्या कहा, गद्या-पद्या ! मैं ऐसी बातें नहीं समझता। आप एक कागज़ पर ही लिख दीजिए। बस, यही बहुत है।

शास्त्रीजी—लिखूँगा तो सरकार, काग़ज़ ही पर, मैं केवल यह पूछता हूँ कि पत्र गद्य-रूप में हो, या पद्य-रूप में ?

रावबहादुर—न-मालूम आप किस मर्ज़ की दवा हैं ! मैं तो आपसे सीधी-सी बात कह चुका कि न मुझे गद्य ही चाहिए, और न पद्य ही।

शास्त्रीजी—जब आप न गद्य ही पसंद करते हैं, और न पद्य ही, तब फिर पत्र लिखा ही किस तरह जायगा ? ऐसी दशा में तो पत्र-लेखन हो ही नहीं सकता। सीधे 'नाहीं' न कर दीजिए ? मुझे आप चक्कर में क्यों डालते हैं ?

[जाने लगता है

रावबहादुर—(रोककर) शास्त्रीजी, आप इतने नाराज़ क्यों होते हैं ? कृपा कर पहले मुझे यह तो समझा दीजिए कि गद्या और पद्या कहते किसे हैं ? उसका मतलब क्या है ?

शास्त्रीजी—अजी साहब, गद्या-पद्या नहीं। जो गद्य नहीं, वह पद्य है, और जो पद्य नहीं, वह गद्य है।

रावबहादुर—जो गद्द नहीं, सो फद्द, और जो फद्द नहीं, सो गद्द। (ठठाकर हँसता है) शास्त्रीजी, इस तरह मज़ाक़ न कीजिए। जो बात कहनी हो, अच्छी तरह समझाकर कहिए।

शास्त्रीजी—हम और आप नित्य जो बातचीत किया करते हैं, वही गद्य है।

रावबहादुर—बड़े आश्चर्य की बात है ! मैं चालीस वर्ष का हो चुका, पर इतने दिनों तक मैंने जिस गद्य में बातचीत की, उसका नाम तक मैं न जानता था ! अब तक मैं जानता ही न था कि संसार में गद्य भी कोई चीज़ है। अच्छा अब कृपा कर यह बतलाइए कि पद्य क्या चीज़ है।

शास्त्रीजी—

"ग्रह-गृहीत, पुनि बात-बस, तेहि पर बीछी मार ;
ताहि पियाइय बारुनी, कहहु, कवन उपचार।"

इसे पद्य कहते हैं। समझे आप ?

रावबहादुर—अच्छा, तो आप पद्य में ही लिख दीजिए। पर ऐसी होशियारी से लिखिए कि पत्र पढ़ते ही उसका हृदय पसीज जाय।

शास्त्रीजी—तो उसका आरंभ इस तरह करूँ कि "हे मृग-नयनी, तेरे कटाक्षों ने मुझे जर्जर कर डाला है—"

रावबहादुर—खबरदार, ऐसी बात न लिखिएगा। जान पड़ता है, आपको इस बात का स्मरण ही नहीं कि मैं गदका-फरी आदि कसरत के खेल खेलता हूँ। अब मुझे जर्जर करने की हिम्मत किसे हो सकती है?

शास्त्रीजी—बहुत अच्छा। मैं सबेरे घर से लिख लाऊँगा। यदि पसंद आ जाय, तो भेज दीजिएगा।

रावबहादुर—किंतु पद्य में होना चाहिए, इस बात का ध्यान रखिएगा!

शास्त्रीजी—ज़रूर।

[जाता है

रावबहादुर—कौन है रे? दौलतिया ओ दौलतिया!

दौलत—(आकर) जी सरकार।

रावबहादुर—क्यों रे, वह दर्ज़ी मेरे नए कपड़े लेकर अभी तक नहीं आया?

दौलत—हाँ हजूर, दरजी तो आवा है, अउर बाहेर बइठ है। मुदा आपु पंडितजी के लगे लिखै-पढ़ै माँ लागि रहे हैं, यहि ते हम वहिका भीतर नहीं आवै दीन।

रावबहादुर—अच्छा, अब उसे यहाँ बुला ला। (दौलत जाता है। दर्ज़ी हाथ में कपड़ों की गठरी लिए आता है। उसके साथ उसका छोटा लड़का भी है)

दर्ज़ी—सरकार, रावबहादुर साहब, राम-राम! (झुक-कर सलाम करता है)

रावबहादुर—क्यों बे, कपड़े इतनी देर में सिए जाते हैं ?

दर्ज़ी—नाहीं हजूर, पचीस नौकर लगायकै हम तुम्हार कामु पहिले कराय दीन है। अइस नीक कामु बना है कि देखतै बनत है।

रावबहादुर—तूने जो परसों वह पतलून भेजी थी, वह तो बहुत ही तंग है। उसमें पैर जाते ही न थे। इससे फाड़कर पहननी पड़ी। यही हाल उस शर्ट का है। जब उसका गला फाड़ा, तब कहीं पहनने लायक़ हुई।

दर्ज़ी—सरकार, हम तौ सार का बहुत ढील बनावा रहै, मुदा आपकै छाती तौ इतनै जल्दी फूल उठी कि हमते कुछु कहतै नहीं बनत ! (हँसता है)

रावबहादुर—पर ये बटन तो देख, किस क़दर टेढ़े लगाए हैं ! और, यह पट्टी भीतर क्यों नहीं लगाई ?

दर्ज़ी—मालिक, बड़े-बड़े रावबहुद्दर अउर बाबू होरि यहि तना की पट्टी लगवावति हैं। आजुकाल्हि का यही तना का पहिरावा है।

रावबहादुर—(दर्ज़ी के पास जाकर, उसकी फतुही का कोना पकड़ता है) तूने यह मेरा कपड़ा क्यों चुरा लिया ? यह तो ज़रूर मेरा ही है। बोल, चुराया कि नहीं ? चोर कहीं के !

दर्ज़ी—मालिक, यहु कपरा अइस नीक रहै कि मैं यहि-के ऊपर मोहि गयों। पै महूँ सरकार क्यार दरजी

आहिउँ । का मोहिका यहि तना का भड़कदार कपरा न चाही ?

रावबहादुर—अच्छा ला, मुझे नए कपड़े पहनकर देखने दे, कैसे बने हैं ।

दर्ज़ी—हँः-हँः, रायसाहेब, यहु का करति हौ ? आप की नहित बड़े आदमी का अपने हाथ ते कपरा न पहिरै चही । आपका यहु करत नीक नहीं लागत । कउनँव सिपाहिन का बुलावव ।

रावबहादुर—पलटू, ओ पलटू !

[पलटू भड़कीली पोशाक पहने आता है

दर्ज़ी—(पलटू से) मैं सरकार का पोसाग पहिरावतु आह्यउँ, तुहू हाथ लगाओ । (रावबहादुर को दर्ज़ी और पलटू पोशाक पहनाते हैं)

दर्ज़ी का लड़का—सरदारबहादुर, आपु यहि तनाँ की पोसाग माँ कइसि नीक लागति हैं !। (झुककर सलाम करता है)

रावबहादुर—(स्वगत) इस लड़के ने मुझे सरदार-बहादुर बना दिया । यह सब पोशाक की महिमा है । यदि मैंने यह पोशाक न पहनी होती, तो मुझे आज कौन सरदारबहादुर कहता ? (प्रकट) ले यह इनाम । (रुपया फेकता है)

दर्ज़ी का लड़का—अन्नदाता, बहुत पावा ।

रावबहादुर—ले, और ले ! (दो रुपए फेंकता है)

दर्ज़ी का लड़का—सरकार बड़े उपकारी हैं।

रावबहादुर—(इनाम में पाँच रुपए का नोट देकर, स्वगत) अब मेरी फ़ज़ीहत होनी चाहती है। यदि इस लड़के ने कहीं मुझे राजाधिराज कह दिया, तो मैं इसे क्या दूँगा ? अब तो मेरे पाकेट बिलकुल ख़ाली हैं।

[दर्ज़ी और उसका बेटा, दोनों बड़े अदब के साथ झुककर सलाम करते और जाते हैं। दूसरी ओर से नौकर सहित रावबहादुर का भी प्रस्थान

दूसरा दृश्य

स्थान—रावबहादुर का भीतरी दालान

[दौलत आता है]

दौलत—कइसि छैलछबीली है। बाप-किरिया, यहि तना केरि चंचल औ चकस्ता मेहरिया मैं अपनी उमिरि-भरे माँ नहीं देख्यौं ! अरे दइया रे दइया ! कइसि हियाँ-हुआँ बिजुली-असि चमकति फिरति है ! (मूछों पर ताव देकर) अब मोहिं पट्ठा ते यह बचै न पाई। मैं अपनी बुआ के घरै आयों काहे के बरे हौं ! खावत-खावत जइहौं, अउर बुआ ते कहिहौं—"बुआ, अब मैं तुम्हरे हियाँ ना रइहौं !" तब उइ कहिबै करिहैं कि हम तुम्हार बियाहु दमड़ी के साथ कइ देबै। कइसि जुगुति निकारयों है ? यहि जुगुति ते बुआ तो मानि जइहैं, मुदा वहि छोकरिया का तो

मिजाजुइ नहीं मिलत। वहिके जी माँ तो भगुवा बसि रहा है। द्याखौ तौ, नहीं जानि परत, वहि जंगली पर यहि या तना काहे का मरति है ? को जानै, वहु यहिके ऊपर धौं कउनि मोहिनी डारि दीन्हेसि है ! (जेब से शीशा निकाल-कर मुँह देखता है) का वहु हमते बढ़िकै मरदु है ? उँह, का वहु बँदरमुँहा हमरी नहित श्वारै होइ सकति है ? (मूछों पर ताव देता है) हमार मुँह कइसि पानीदार और पक्के रंग का है ! वहि सारे का द्याखौ, घुग्घू का-अस मुँह लीन्हे फिरत है ! तउनेव पर यह पगली उहिके ऊपर मरी जाति है ! हमरी माफिक रँगीले जवान का छाँड़िकै वहि-के ऊपर मरी जाति है ! रातिउ-दिन हम यहिके साथ रहिति है। मीठी-मीठी बातन ते हम यहिका जिउ बहि-लाइति है। मुदा तउनेव पर यह हमका कूकुर की नहित हउहाइकै दउराति है। जहाँ भगुवा आवा, तहाँ फिर का, अलल्लै-तलल्लै उड़ै लगती हैं। दमड़ी, का हम तुम्हरे बाप का घोड़ु छ्वारा है ? ई तौ सब उहि राँड़ के ढ्वाँग आहीं। फुर-फुर पूछौ, तौ हमहूँ उहिका पियारि हन। अरे राम रे राम ! वहि दिन तौ हम उहिका मटकु-चटकु देखिकै घायल ह्वइ गयन। परौं तौ बुआ कही दीन्हेनि है कि दमड़ी के साथ तुम्हार बियाहु जल्दी कइ देबै। अब का ! अब तौ यहु पट्ठा वहिके घरवाला होई ! अब जो यह हम का देखि परी, तौ हम कउरियाय ल्याब। बाप कै दोहाई,

अब तौ हमते नहीं रहा जात। (कुछ सोचकर) का? अब तो जो वह आई, तौ हम आँखी माँ किरकिरी का बाढ़रु कइकै वहिके लगे धीरे-धीरे जइबे! फिर का है (सामने किसी को आते देखकर) अरे आय गै! आय गै! (चटपट से आँखें मलने लगता है। सामने आते हुए भगुवा को दमड़ी समझ-कर उससे लिपट जाता है)

भगुवा—(स्वगत) यहु गँड़िहा का सार दमड़ी का चहत है। तउन हम हीं का दमड़ी समुझि लीन्हेसि है। (दबी आवाज से) तौ का भा? मुदा जो कोऊ देखी, तौ थूँकी ना? जो अपने मन ते लाज नहीं लागति, तौ का दुनियाँ के........(घबराई हुई आवाज से) अरे-अरे बुआ—अउती—भागौ—भागौ। (दौलत हड़बड़ाकर आँखें खोलता है, तो क्या देखता है कि भगुवा सामने खड़ा है। उसे देखकर दौलत शरमाता है)

दौलत—(झूठी हँसी हँसकर) कहौ कइसि रंगति कीन?

भगुवा—सारे, त्वैं कीन्ह कि हम कीन्ह? सारे त्वहिंका घींच उठायकै बात करै माँ लाज नहीं लागत! घर माँ यही तना नौकरन-चाकरन के साथ कामु कीन्ह करत हई?

दौलत—(नाराज होकर) यािखब सारे का मिजाज? कउन ढंग कीन! औ जो कीन, तौ तुम्हरे बाप का का लागत है? बहुत बक-बक करिहौ, तौ मुहुँ तूरि डारिब। तुम्हरे बाप का कउन जियान होत है?

[दोनों लड़ते हैं। भगुवा दौलत को उठाकर पटक देता है। इतने में दौलत को रावबहादुर पुकारता है । पुकार सुनकर वह बक-बक करता हुआ जाता है

भगुवा—(स्वगत) अब की दईं तुम दमड़ी का नाँव लेव, तौ हम तुमका मंसवा वदी !

दमड़ी—(आकर) यहु कउन आय रे ? चोरी करै की घात माँ तौ नहीं आवा ?

भगुवा—(हँसता हुआ) हँः-हँः ! इरादा तौ यहै है। (दमड़ी का हाथ पकड़कर) तुम ही का चोरावै के बरे आयन है। अच्छा फिरि एकु—

दमड़ी—यहि तना कै लुच्चपना हमका नहीं नीकि लागति ! अरे हो दाखव, रावबहादुर आवति हैं। बस-बस होइ गा। ई बातैं रहै देव। मालती यहु कागदु तुम्हरे मालिक बिसनूलाल का दीन्हेसि है। यहिका लेव, औ जल्दी भागव ।

[दोनों जाते हैं

तीसरा दृश्य

स्थान—रावबहादुर की बैठक

[पार्टी में शामिल होने के लिये रावबहादुर फ़ैशनेबिल ड्रेस किए, चुरुट का धुआँ इधर-उधर फेंकता हुआ टहल रहा है]

रावबहादुर— (स्वगत) कुछ भी क्यों न करें, पर यह मेरे

हर एक काम में दख़ल देती ही रहती है ! यह किसी तरह यहाँ से काला मुँह करके चली जाय, तो बहुत अच्छा हो। ऐसा हो जाय, तो मैं इसके फंदे से छूट जाऊँगा। कहती थी कि मौसी के यहाँ जाना है ; पर यह टली अभी तक नहीं। अब सपने में भी मायके जाना नहीं चाहती। मरते दम तक यहीं रहने का हठ किए बैठी है। पर राँड़ मरती भी तो नहीं ! बस्ती में प्लेग और हैज़े से हज़ारों आदमी धड़ाधड़ मर रहे हैं, लेकिन इसका सिर भी नहीं दुखता। मानो अमृत पीकर आई है—

मनिकाबाई—(आती है) क्यों, क्या सोच-विचार हो रहा है ? जान पड़ता है, अभी तक तुम्हारी साध पूरी नहीं हुई ! तुम्हारे ये रंग-ढंग सोने की गृहस्थी को मिट्टी में मिलाए बिना न रहेंगे ! सारा काम-काज चौपट हो रहा है। कहते हैं, रावबहादुर हूँ। ऐसे को रावबहादुर नहीं, 'घरफूँकबहादुर' कहना चाहिए।

रावबहादुर—तेरी बातों का कुछ ठिकाना भी है ? अब यहाँ आ गई ! तुझे बुलाया किसने है ? चल, निकल यहाँ से। घर का काम-काज देख। सामने से हट जा। मैं इस समय बहुत नाराज़ हूँ।

मनिकाबाई—अरेरे ! बड़ी नाराज़ी है। इस नाराज़ी का डर किसी और को दिखाना ! मैं तो ये स्वाँग नित्य ही देखती रहती हूँ। क्या कहा, यहाँ से चली जा ? क्यों ?

मैं क्यों जाऊँ? जान पड़ता है, और कोई दई-मारे खोपड़ी के बाल नोचने आए हैं। अच्छा है, सारी गृहस्थी लुटा-कर फिर वही पुश्तैनी पेशा—रस्सी बटना और कुली का काम—करो। तुमसे और होगा ही क्या?

रावबहादुर—अब तू बक-झक करना बंद करती है, या नहीं? क्या तुझे—चुप अरी चुप, वह देख मेरे दोस्त आशाराम आ रहे हैं।

मनिकाबाई—(उधर देखकर हँसती है) यह आपके 'दिवा-लिया' दोस्त आशाराम नहीं हैं! अच्छी तरह देखिए, यह तो विष्णुलालजी आ रहे हैं।

रावबहादुर—कौन, क्या यह विष्णुलाल है? यह किस-लिये आया है? (बड़ी शान से अकड़कर खड़ा होता है, इसी समय विष्णुलाल आकर राम-राम करता है)

विष्णुलाल—रावबहादुर साहब, राम-राम! आपको रावबहादुरी मिलने से मुझे बड़ा आनंद हुआ। इसी के उपलक्ष में आपको बधाई देने और आपसे—

रावबहादुर—(बात काटकर) और क्या, जो कुछ कहना हो, झटपट कह डालो। मुझे बहुत ज़रूरी काम है।

विष्णुलाल—मैं आपके चरण-कमलों के निकट एक विनीत प्रार्थना करने आया हूँ।

रावबहादुर—अच्छी बात है। मेरे चरणों से प्रार्थना

करने आए हो ? (पैर आगे बढ़ाता है) लो, ये हैं ; इनसे जो कुछ कहना हो, कह लो।

मनिकाबाई—(रावबहादुर से) हैं-हैं, यह क्या करते हो ? क्या आज बुद्धि कहीं चरने चली गई है। वह जो कहते हैं, उसे अच्छी तरह सुन क्यों नहीं लेते ?

विष्णुलाल—मुझे जो कुछ कहना है, उसके कहने में यद्यपि कुछ संकोच अवश्य है, तथापि मेरी तरफ़ से आपसे बातचीत करनेवाला कोई और न होने के कारण, लाचारी से, मुझे ही दो बातें कहने को आना पड़ा। समय ऐसा आ गया है कि आज मुझे लज्जा और संकोच आदि को तिलांजलि देनी पड़ती है। इसके लिये मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ। अब से तीन वर्ष पहले मेरे यहाँ आप सगाई कर चुके हैं। सब लोगों को इस बात का निश्चय हो चुका है कि राव-बहादुर की लड़की के साथ मेरा ब्याह होनेवाला है। वास्तव में, आपने इस विषय में उदारता दिखलाकर मुझ पर अनंत उपकार किए हैं। आप-जैसे रावबहादुर का जमाई होने में मेरी शोभा है, और मेरे-जैसा जमाई पाकर आपको भी प्रसन्न होना चाहिए। आपसे यह बात छिपी नहीं है कि हम दोनों में परस्पर कितना गहरा प्रेम हो गया है। इतना सब हो चुकने पर—लोगों में, जाति-पाँति में, इस संबंध की चर्चा हो चुकने पर भी—अपनी बात तोड़कर, पहले विचार को रद् करके, उस दिवालिए आशाराम को

आप अपनी बेटी देनेवाले हैं—यह अशुभ समाचार सुन-कर मैं लज्जा और संकोच बढ़ाकर यहाँ आपकी सम्मति जानने आया हूँ। सच बात तो यह है कि वाग्दान और विवाह में कुछ अधिक अंतर नहीं है। एक बार पक्की बात-चीत हो चुकने पर विना किसी गहरी अड़चन के रिश्तेदारी तोड़ने में—वचन-भंग करने में—किसी की शोभा नहीं है। आपने मुझमें ऐसा कौन-सा ऐब और आशाराम में ऐसा क्या अद्भुत गुण देखा, जो आज आप हम दोनों प्रेमियों के पारस्परिक प्रेम-रस में विष घोलने को उद्यत हुए हैं? भला, मैं उस अपराध का नाम भी तो सुन लूँ, जिसके बदले में मुझे यह दंड दिया जा रहा है?

रावबहादुर—(अकड़कर) मैं तुमसे एक बार कह चुका कि इस वक्त मुझे फ़िज़ूल बातें सुनने और करने की फ़ुरसत नहीं है। मेरी लड़की उसी को मिल सकती है, जिसे कोई अच्छी उपाधि मिली हो, या जिसने किसी सरदार-घराने में जन्म लिया हो। तुम-जैसे भिखारी को मैं अपना जमाई कभी नहीं बना सकता। अच्छा, अब आप चुपचाप तशरीफ़ ले जाइए। मुझे अधिक बक-झक पसंद नहीं। इस वक्त मुझे फ़ुरसत भी नहीं है। आज उन कचरापुर के नवाब को मुबारकबादी देने के लिये जो जलसा होनेवाला है, उसमें शरीक होने के लिये मुझे जाना है। (घड़ी देखता है)

विष्णुलाल—रावबहादुर साहब, उपाधि और सरदारी की धुन ने आपको पागल बना दिया है। साहबों के बूट साफ़ कर और 'जी हुज़ूर' करके जो उपाधि के तमग़े छाती पर लटका लिए जाते हैं, उनसे कोई अयोग्य पुरुष कभी योग्य नहीं हो सकता—कमीने कमीने ही रहेंगे, सरदार नहीं हो सकते। मैं तो समझता हूँ कि ऐसी एक-दो नहीं, सौ-दो सौ उपाधियाँ प्राप्त कर ली जायँ, तो भी अयोग्य व्यक्ति अयोग्य ही रहेगा—वे उपाधियाँ उसे रत्ती-भर भी ज्ञान-दान न करेंगी। यदि गधे पर शक्कर की गोन लाद दी जाय, तो उसे शक्कर के स्वाद का अनुभव स्वप्न में भी न होगा, और न वह उसकी क़ीमत समझ सकेगा। रँगे सियार की क़लई थोड़ी ही देर में खुल जाती है। ऐसी उपाधियों के कारण उसका और भी उपहास होने लगता है। इसलिये आप अपने दिमाग़ से ऐसे बेहूदा, भयंकर विचारों को जितनी जल्दी हटा दें, उतना ही अच्छा। सरदार-घरानों का भी यही हाल है। जिनका नाम सरदार शार्दूलसिंह है, उन्हें भी कोई टके के लिये नहीं पूछता। अच्छे कुलीन सरदार भी अब मारे-मारे फिरते हैं। आजकल आपको ऐसे ही सरदार और कुलीन अधिक मिलेंगे। मैंने ऐसे कितने ही सरदारों और कुलीनों को देखा है, जो 'हाँ जी-हाँ जी' करके—कितनी ही दुर्दशा भोगकर—पेट भरने के लिये दूसरों

का मुँह ताकते रहते हैं कि यदि दो-चार पैसे मिल जायँ, तो आज का दिन किसी तरह बीत जाय। इसमें संदेह नहीं कि मेरे नाम के साथ रायसाहबी अथवा रायबहादुरी का पुछल्ला नहीं लगा, और न मेरा जन्म किसी ऐसे घराने में हुआ है, जिससे मैं कोई प्रसिद्ध ज़मींदार या सरदार कहला सकूँ, तथापि मैंने अपने पौरुष से, कष्ट सहकर, स्वतंत्रता-पूर्वक आज की यह स्थिति प्राप्त कर ली है। मैंने बिलकुल निर्धन, किंतु पुरातन, प्रतिष्ठित घराने में जन्म लिया है। यदि कोई यह कहे कि तुम 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू' बन रहे हो, तो उसे कौन रोक सकता है? किंतु मैं आज आपसे यह स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि मुझ-जैसा जमाई प्राप्त करने के लिये कुछ पुण्य चाहिए। ऐसे ऐन मौक़े पर अपना विचार पलटकर आप—

रायबहादुर—बस-बस, माफ़ कीजिए! मैं आपकी सारी कथा नहीं सुन सकता। सीधी-सी बात यह है कि जब आपको कोई उपाधि नहीं मिली, और न आपका जन्म ही किसी धनी सरदार के यहाँ हुआ है, तब मेरी लड़की आपको इस जन्म में तो क्या, सात जन्म में भी नहीं मिल सकती। अब आप यहाँ से बहुत जल्द सटकिए—एक मिनट की भी देर न कीजिए।

[विष्णुलाल खिन्न और क्रुद्ध होकर जाता है

मनिकाबाई—हैं! यह क्या? किसी भले मानस के साथ

कोई इस तरह बातचीत करता है ? ज़रा परमेश्वर से भी डरो, किसी का इस तरह अपमान न किया करो। और, यह तो बतलाओ कि तुम्हीं कहाँ के सरदार हो, जो किसी कुलीन ज़मींदार को अपना जमाई बनाने का हठ किए बैठे हो ? क्या वे बातें भूल गए, जब मालती के बाबा (मेरे ससुर) मज़दूरी करके पेट पालते थे ? मेरे पिता ने न-जाने कैसे-कैसे कष्ट सहकर इतनी संपत्ति जमा कर ली थी, और मेरे साथ ही वह प्रचुर संपत्ति तुम्हें सौंप दी । बतलाओ न, तुमको कहाँ किसने सरदारी दी है ? मैं भी तो सुनूँ। खुद तो पैसा पैदा कर ही नहीं सकते, उलटे बने-बनाए घर को उजाड़ने का बीड़ा उठाया है। बलिहारी है बुद्धि की !

रावबहादुर—चुप रह, ज्यादह बड़-बड़ मत कर। तेरा बाप मज़दूरी करता रहा होगा ! इसकी लाज तुझे ही होनी चाहिए ! मुझे क्या पर्वा, वह कुछ भी क्यों न करता रहा हो।

मनिकाबाई—फिर उसी मज़दूर की लड़की के साथ ब्याह क्यों किया ? मेरे बाप ने बड़ी-बड़ी मुसीबतें झेल-कर ज़िंदगी-भर में जो कुछ जमा किया था, वह सब तुम्हें दे डाला। इसी से आज तुम ये रंग-बिरंगे कपड़े पहने फिरते हो ; नहीं तो फटी लँगोटी भी नसीब न होती, और न-जाने कहाँ मारे-मारे फिरते !

रावबहादुर—बस, चुप रह। मैं कहे देता हूँ कि अब तू फ़िज़ूल बक-बक मत किया कर। मैं खूब जानता हूँ, जब तक नष्ट देव की भ्रष्ट पूजा नहीं की जाती, तब तक वह राज़ी नहीं होता। तेरे साथ जब तक मैं दया-मया दिखलाता रहूँगा, तब तक तू इसी तरह झगड़ती रहेगी। तू अपना काम किया कर। अपनी बराबरी का जमाई मैं आप ढूँढ़ लूँगा। तुझसे सलाह लेता ही कौन उल्लू है! मेरे-जैसे रावबहादुर की लड़कियाँ कहीं कंगालों को जयमाला पहनाती हैं! हुश, यह कभी नहीं हो सकता।

मनिकाबाई—क्या कहा, तुम मुझे ऐसी बातों में टोका मत करो? इसका यही मतलब हुआ कि मेरा कुछ भी अधिकार नहीं है—क्यों? (मुँह बनाकर) कहते हैं, यह कभी हो ही नहीं सकता, देखती हूँ, कैसे नहीं हो सकता! होगा, होगा, हज़ार दफ़े होगा! तुम्हारे किए कुछ भी न होगा, तुम्हारी एक भी न चलेगी। मैं अपनी मालती विष्णुलाल को ही दूँगी। देखती हूँ, कौन दई-मारा मुझे रोकता है!

रावबहादुर—औरतों को अपनी होशियारी चौके-चूल्हे में ही दिखलानी चाहिए। चूल्हा फूँकते-फूँकते तेरी अक़्ल आग में जल गई है। देख, मैं फिर भी समझाए देता हूँ, तू ऐसे कामों में मुझे रोका मत कर, और न ज़िद ही किया कर। क्या तेरे कहने का यह मतलब नहीं है कि उस भिखारी के साथ मेरी प्यारी बेटी मालती भी

गली-गली भीख माँगती फिरे? मूर्ख कहीं की, मैं उसका ब्याह किसी धनवान् ही के यहाँ करूँगा—उसे किसी सरदार ही की बीबी बनाऊँगा। बस, मेरा यही दृढ़ निश्चय है।

[मनिकाबाई पैर पटकती हुई जाती है

मालती—(पिता के सामने आकर * और हाथ जोड़कर) बप्पा, ए बप्पा, तुम ऐसी ज़िद न कर बैठना! मैं सरदारी नहीं चाहती, मुझे धन-दौलत भी न चाहिए। मैं न उपाधि की भूखी हूँ, और न जागीर की। अगर आपको मेरी यही दुर्दशा करनी थी, तो फिर लिखा-पढ़ाकर मुझे भले-बुरे का ज्ञान क्यों होने दिया! इससे तो यही अच्छा था कि मैं अपनी अशिक्षिता बहनों की भाँति अपढ़ रहकर सुख से रहती। हाय, मैं दोनों दीन से गई। जो मैं मूर्ख होती, तो इतना सुख तो अवश्य रहता कि मेरे गले की रस्सी तुम जिसे पकड़ा देते, उसी के साथ मैं चुपचाप चली जाती। आपने पढ़ना-लिखना सिखलाकर उच्च शिक्षा दिलाई, इससे मुझे भले-बुरे का ज्ञान हो गया है। यह सब हो चुकने पर मैंने अब क्या अपराध किया है, जो मेरे साथ आप ऐसा भयंकर बरताव करनेवाले हैं! इससे तो यही अच्छा था कि आप मुझे विष दिलाकर मरवा डालते, या मेरा गला ही घुटवा देते!

---

* मालती अभी तक किंवाड़े की आड़ में खड़ी सब बातें सुन रही थी।

बप्पा, मुझे बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है—मुझे जो न कहना चाहिए, वही कहना पड़ता है—कि जब प्रेम किसी जगह हो जाता है, तब वह उस स्थान से ज़रा भी नहीं हिल सकता। प्रेम के आगे संसार के सभी सुख, भोग-विलास और ऐश्वर्य तुच्छ हैं। किसी राज-महल में रहकर, नाना प्रकार के सुख भोगने का सामान उपस्थित रहने पर भी, जिस सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती, वही सुख किसी मामूली झोपड़ी में रहकर अनंत कष्ट सहने-वाले साधारण मनुष्यों को मिलता है। द्रव्य से सुख का घना संपर्क नहीं है। मैं पहले ही से अपने हृदय-मंदिर में उनकी प्रतिष्ठा कर चुकी हूँ। अब कुछ भी क्यों न हो, उस सिंहासन पर किसी दूसरे का अधिकार नहीं हो सकता। मैं मन से उनकी हो चुकी, अब किसी और की नहीं हो सकती। उनके सिवा और लोग मुझे तुम्हारे समान हैं। वह मुझे कितने ही कष्ट क्यों न दें, उनके साथ मुझे भीख ही क्यों न माँगनी पड़े, पर मैं उनका साथ स्वप्न में भी नहीं छोड़ सकती। मैं किसी दूसरे के यहाँ रहकर अनंत सुख और ऐश्वर्य की स्वामिनी बनना पसंद नहीं करती। आप उन्हें एक बार जो वचन दे चुके हैं, उसे अब न टालिए—प्रतिज्ञा-भंग न कीजिए। प्रतिज्ञा-भंग करने का पातक—

रावबहादुर—(क्रोध से) चांडालिन, मुझे ब्रह्म-ज्ञान सिखलाने आई है! इतना धन खर्च करके जो लिखाया-

पढ़ाया, उसका तू मुझे यह बदला दे रही है ! निर्लज्ज होकर मुझे प्रेम की बातें सिखला रही है ! मेरे आगे ऐसी बातें कहते तुझे शरम नहीं लगती कि मुझे वही दुलहा चाहिए, मैं उसी को जयमाला पहनाऊँगी। तू उस कंगाल के साथ भीख माँगना चाहती है ! निकल यहाँ से ! हट, दूर हो ! और किसी के साथ ब्याह नहीं कराना चाहतीं ! तू अब तक क्या समझे बैठी है ? अब तो मैं उन आशाराम के ही साथ तेरा विवाह करूँगा, तू राज़ी हो या न हो। मैं अब तेरी एक भी न सुनूँगा। बेशरम, जा यहाँ से।

[मालती को ढकेलता है

चौथा दृश्य

स्थान—मोतीबाग़

[एक बेंच पर विष्णुलाल बैठा है। उसके चेहरे से उदासी टपक रही है]

विष्णुलाल—जो होना था, हो चुका। अब किसी तरह की आशा नहीं। आशा के जाल में फँसना भी निरी मूर्खता है। ओह, वह चमकीली मणि उस बंदर को पहनाई जायगी ! गिरधारीसिंह परमेश्वर के दरबार में तुम इस पातक का समर्थन किस युक्ति से करोगे ? तुम्हारी आँखों में उपाधि की गर्द छा गई है। तुम सार-असार का विचार नहीं कर सकते। पात्र-अपात्र का ज्ञान तुमसे कोसों दूर

भाग गया है। तुम मन-माना व्यवहार कर रहे हो, पानी की तरह धन को बहा रहे हो। तुम इस तरह जितनी मूर्खता प्रकट करते हो, करो; मुझे इस संबंध में कुछ कहना नहीं है। उसकी ज़रूरत भी नहीं। परंतु तुमने अपनी लड़की के साथ जो कठोर आचरण करने का निश्चय किया है, वह बहुत बुरा, बल्कि महापातक है। मैं डंके की चोट कहे देता हूँ कि परमेश्वर के यहाँ तुम्हें इस पातक का भयंकर प्रतिफल मिलेगा। इस पातक के दंड से तुम्हारा छुटकारा कदापि नहीं हो सकता। मगर मुझे करना ही क्या है? वह अपनी करनी का फल आप भोगेगा; मैं क्यों पागलों की तरह बकवाद कर रहा हूँ। बेचारा गिरधारीसिंह ही क्या करे? उसी का क्या अपराध है? अगर भगवान् की यही मर्ज़ी है कि मैं सुखी न रहूँ, अगर हम दोनों के भाग्य में चिर-विच्छेद ही लिखा है, तो उस मूर्ख गिरधारीसिंह को सुबुद्धि कहाँ से होगी? देखो, दैवी योजना कैसी विचित्र है। वह लावण्य की खान, सद्गुणों की मूर्ति, प्रेमनिधान किस लुच्चे-लफंगे दिवालिए के साथ ब्याही जाकर दुःख-सागर में डुबाई जानेवाली है! यह पाजी आशाराम उलटी पट्टियाँ पढ़ाकर इस गिरधारीसिंह को दो कौड़ी का कर देगा। (मालती आती और विष्णुलाल को इस तरह आप-ही-आप बकते-झकते देखकर असल बात जानने के लिये एक पेड़ की आड़ में ठहर जाती है) इस मूर्ख

ने आशाराम को दामाद बनाने में क्या विशेषता देखी है ? इतने दिन से हम दोनों के बीच परस्पर प्रेम बढ़ता गया, हम दोनों ने परस्पर सौगंद भी खा ली, और ये बातें इसको भली भाँति मालूम हैं। यह आप दस भले आदमियों के आगे वचन दे चुका है, फिर भी आज हमारे रस में विष घोलने को उतारू है। आशाराम को सरदार-घराने का समझता है, और इसी से उसकी लल्लो-पत्तो में पड़ गया है। इसकी खोपड़ी में सरदारी और उपाधि का अजीब पागलपन समा गया है, जिससे यह भला-बुरा कुछ भी नहीं सोच सकता। उधर वह आशाराम मालती को हृदय से चाहता भी नहीं। सुना है, वह उस रामबाई पर लट्टू है। किंतु अब उसी के साथ मालती का ब्याह होनेवाला है। ओफ़ ! ऐसा हो जाने पर उस बेचारी ग़रीब गाय की बड़ी दुर्दशा होगी। अब मैं इस संबंध में कितनी ही चिंता और सोच-विचार क्यों न करता रहूँ, उससे रत्ती-भर भी लाभ न हो सकेगा। हठीला और मूर्ख गिरधारी-सिंह अपनी टेक पूरी किए बिना न मानेगा। वह बेचारी उस बंदर के गले में अवश्य बाँध दी जायगी। यदि ईश्वरी संकेत यही है कि मैं सदा दुःख ही भोगता रहूँ, तो इसका कुछ इलाज नहीं। मेरे सुख की आशा-लता पर पाला पड़ गया ; अब उसके लहलहाने की आशा नहीं। (मालती को आते देखकर) कौन है ? प्यारी मालती ! (परस्पर मिलते हैं)

मालती—(प्रसन्नता के साथ) आप ऐसे किस गहरे विचार में मग्न थे ? क्या मैं उसे सुन सकती हूँ ?

विष्णुलाल—कैसा गहन विचार ! कहाँ का गहन विचार ! और कहाँ का क्या ? तुम्हें अपना हृदय सौंपने में मैंने बड़ी भूल की। यदि परमेश्वर की यही इच्छा हो कि मेरी इसी तरह विडंबना होती रहे, तो इसे तुम और तुम्हारे पिता कैसे टाल सकते हैं। उस आशाराम ने पूर्व-जन्म में न-जाने क्या पुण्य किए होंगे, जिसके बदले में उसे आज—

मालती—(बीच ही में रोककर) ख़बरदार, ऐसी अशुभ बात अपने मुँह से न निकालना ! मैं एक बार जो बात कह चुकी, उसे जीते-जी नहीं बदल सकती। आपको छोड़-कर अन्य सांसारिक पुरुष मेरे पिता के तुल्य हैं। पिता-जी कुछ भी सोचें और कहें, मैं अपने निश्चय को कभी नहीं बदल सकती। इसके सिवा आशाराम के संबंध में तो पिताजी का विचार बिलकुल ही निर्मूल है। उसके तन-मन की स्वामिनी तो वह रामबाई है। यही क्यों, उसके तो विवाह का भी निश्चय हो चुका है। यह समा-चार मुझे रामबाई ही के घर से मिला है। रामबाई की भतीजी हीरा मेरे साथ पढ़ती है। वह मेरी सखी है। उसी ने मुझे कुल बातें बताई हैं। (कान में कहती है) पिताजी का विचार कभी सफल नहीं हो सकता। आप इस तरह निराश न हो जायँ।

विष्णुलाल—(आनंद से) क्या यह संवाद सत्य है? प्रभो, तू बड़ा दयालु है! अच्छा अब तुम घर जाओ। मैं आशाराम से मिलकर आगे का हिसाब-किताब तय करता हूँ।

[मालती जाती है

विष्णुलाल—(तालाब के किनारे टहलता हुआ) आशाराम, अब तक मैं तुम्हारा तिरस्कार किया करता था, परंतु आज से तुम मेरे मित्र हो गए। उस मूर्ख गिरधारीसिंह को फाँसे में डालकर और मन-माना धन लूटकर अंत को उसे मुँह के बल पटकने का तुम्हारा विचार यद्यपि अच्छा नहीं कहा जा सकता, तथापि अब मैं तुम्हें इसके लिये अपराधी नहीं समझता। तुम्हारी इस युक्ति से तुम्हारा काम तो सिद्ध होगा ही, साथ ही मेरी भी इच्छा पूर्ण हो जायगी। तुमने मेरे मार्ग को निष्कंटक कर दिया। तुम्हारी कामना की सफलता के लिये मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ। इस बुद्धि-हीन मूर्ख गिरधारीसिंह को इसी प्रकार मुँह के बल पटककर इसकी ऐसी ही फ़ज़ीहत करनी चाहिए! आशाराम, तुमने ढंग तो अच्छा सोचा है—

भगुवा—(आता है) हमारि जुगुति सुनिहौ, तौ—

विष्णुलाल—(अचरज से) तू कब आ गया? गधे कहीं के, तूने मेरी बातें भी सुन लीं!

भगुवा—हाँ सरकार, मुदा मालती तुम्हरे कान माँ जउनि बात कहेनि है, तउनि हम अच्छी तराँ नहीं समझा।

विष्णुलाल—अरे गधे, तो क्या तू छिपकर हमारी बातें सुन रहा था? (मारने दौड़ता है)

भगुवा—(हटकर) हम हियाँ बड़ी देर ते बइठि हन। मुदा तुम्हरे दूनों जनेन के बीच माँ मीठी-मीठी बातें होती आहीं, तउन हम समझा कि तुम्हरे बीच माँ जायकै काहे का गड़बड़ करी। मालिक हमारि जुगुति तौ सुनौ। हमारि जुगुति सुनिहौ, तौ कइहौ कि भगुवा, त्वैं सब कामु फते कइ डारे।

विष्णुलाल—भला सुनूँ तो सही, तूने कौन-सी युक्ति सोची है।

भगुवा—जुगुति तौ बहुतै नीकि है! (इतने में आशाराम आता और एक पेड़ की आड़ में खड़ा होकर बातचीत सुनता है) हम अइसि हिकमति निकारा है कि रावबहादुर के दाँत खट्टे हुइ जइहैं। यहिका मिजाजुई नाहीं मिलत। अब तौ हम मियें की जूती मियें के सिरवाली करब। मालिक, आप जानत हइहैं कि आपके हियाँ नौकरी करै के पहले हम डिल्ली माँ एकु सरदार के हियाँ पाँच-छा बरस नौकरी कीन है। यहिते हम सरदारन के हियाँ की रीति-रवाजु अउर उनकै बोली-बानी जानित है। यहिते अब

यहि बइलाने रावबहदुरा की आँखिन माँ धूरि भवाँकै माँ हमका केतनी द्यार लागी ? सरदारगंज के बहुरुपिया कै औ हमारि बड़ी जान-पहिचान हवै। वही सारे का फुसिलायकै हम तुम्हरे बरे अच्छी-अच्छी पोसाक लीन्हे आइत है। वहि पोसाक का पहिरिकै तुम साही सरदार बनि जाव, औ यहि पगला रावबहदुरा का चक्कर माँ डारि देव।

[इतने में आशाराम को आते देख विष्णुलाल और भगुवा वहीं दबकके रह जाते हैं

आशाराम—(प्रवेशकर) दोस्त, हिकमत तो आपकी बढ़िया है। (वे दोनों और भी झेंपते हैं) आप घबराते क्यों हैं ? मैं आपकी दिल से मदद करूँगा। इस गधे को इसी तरह फँसाना चाहिए। विष्णुलालजी, आप इतवार के दिन रामबाई के घर आइए। वहीं सारा ब्यात-बाँत ठीक होगा। मैं आपको इस बात का वचन देता हूँ कि इस काम में आपको जितना रुपया-पैसा दरकार होगा, सब रामबाई के पास से खर्च किया जायगा। इसकी आप बिलकुल चिंता न करें। आप खुशी से सरदार बनिए। मैं अभी से रावबहादुर के यहाँ आपकी तारीफ़ करना शुरू करता हूँ। मैं इस काम में आपकी पूरी-पूरी मदद करूँगा। यह काम मेरे ज़िम्मे रहा।

विष्णुलाल—मित्र आशाराम, अब मैं आपका सदा के

लिये ऋणी हो गया। आप मेरे सहायक बनिए। मुझसे जो कुछ हो सकेगा, मैं आपके लिये तन-मन से तैयार हूँ। पर अभी इस बात का किसी को कानोंकान पता न लगने पावे। सब बातें बिलकुल गुप्त रहें।

आशाराम—मेरी तरफ़ से आप बिलकुल बेखटके रहें। अँधेरा होने लगा। चलो, अब अपने-अपने घर चलें।

[जाते हैं

[परदा गिरता है]

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—रावबहादुर का कमरा

[रावबहादुर सामने शीशा रखकर मूछों में खिजाब लगा रहा है । इसी समय जल्दी-जल्दी दमड़ी आती है]

दमड़ी—साह, तुम हमका बोलायो है? वहु मरगइल पंडा कहत रहै कि साह तुमका बोलाइन है। ही-ही-ही (हँसती है)

रावबहादुर—देख, मुँह सँभालकर बोल ! क्या तुझे मालूम नहीं कि मैं कौन हूँ, और मुझे क्या उपाधि मिली है ? जो तू मुझसे 'रावबहादुर सरकार' कहकर बात-चीत न करेगी, तो मैं तेरे दाँत तोड़ दूँगा।

दमड़ी—(हँसती हुई) साह, आप बड़े राइसाहेब आही ?

रावबहादुर—ढीठ कहीं की, फिर वही बात कहती है। मैं न साह हूँ और न रायसाहेब। मैं हूँ रावबहादुर, समझी, रावबहादुर !

दमड़ी—(मुसकिराती हुई हाथ जोड़कर) ए राइबहादुर, का कहति हौ, जल्दी-जल्दी कहौ। अबहीं मालकिन बोलावै लगिहैं। आजु घर माँ बहुत कामु है। ही-ही-ही—

रावबहादुर—गधी, इस तरह खीसें क्यों निकालती है?

दमड़ी—(और भी जोर से हँसकर) साहजी, आपु काहे का रिसाति हैं ? साहजी, हम तो अपन अइसेहे हँसित हन।

रावबहादुर—(गुस्सा होकर उसे मारने दौड़ता है) फिर वही बात ! इस बेशरम को इतना समझाया, तो भी यह साह कहना नहीं छोड़ती।

दमड़ी—(कुछ पीछे हटकर हँसी को रोकती हुई हाथ जोड़कर) साहजी, हमारि भूल-चूक माफ करो। (स्वगत) हम का करी, यहि साह के दखतै हमका हँसी आय जाति है ! (खिलखिलाकर हँसती है) राइसाहेब, आपु तो यहि तराँ बहुत नीकि लागति हैं।

रावबहादुर—देख दमड़ी, अब भी चेत जा। तेरा मुँह बहुत बढ़ गया है। फिर भी समझाए देता हूँ कि मैं न साह हूँ, और न रायसाहब ; मैं हूँ रावबहादुर ! (क्रोध से देखता है)

दमड़ी—(स्वगत) द्याखव राइसाहेब की आँखी कइसी घुग्घू की-अइसी देखि परती हैं (फिर खिलखिलाकर हँसती है) राइसाहेब, तुम चहै हमका मारि डारौ, मुदा हमारि हँसी तौ नाहीं रोकी रुकति है। यहिते हमार कउनो उपाव नहिन। तुम्हारि यह पोसाक औ ठाठ देखिकै हमार जिउ थाहू नहिं रहत। कहौ साहुजू, कउन हुकुम है ?

रावबहादुर—अरे फिर वही बात! तेरी अक़्ल क्या चरने गई है? मैं रावबहादुर हूँ, रावबहादुर। अब कान खोलकर सुन, और इस बैठक को अच्छी तरह बुहारी देकर साफ़ कर दे। आज कुछ यार-दोस्त यहाँ आनेवाले हैं।

दमड़ी—राइसाहेब......नाहीं, नाहीं, राइबहादुर, का तुम्हारि सँघाती अवार हैं? तब तो फिर हमारि करमु फूटि गा। घर-भरे माँ कचरा करिहैं।

मनिकाबाई—(प्रवेश करके) अजी, तुम यह क्या किया करते हो? लोगों की बातों में आकर पागलों की तरह स्वाँग बनते हो! छिः-छिः! सब लोग तुम्हारी निंदा करते हैं—पीठ-पीछे थूकते हैं; मगर तुम्हें कुछ भी पर्वा नहीं है।

रावबहादुर—चल, बस रहने दे। आई है मुझे सिखाने! कहती है, लोग तुम्हारे चरित्र देखकर हँसते हैं। हँसते हैं, तो हँसने दे। मेरा क्या नुक़सान है; उन्हीं के दाँत बाहर निकलेंगे।

मनिकाबाई—अब तक तो मैं चुप ही थी। लेकिन तुम अपने-आप सीधे रास्ते पर आते नहीं देख पड़ते। तुम्हारी सात सवारों में गिनती होने लगी है। यह क्या पागलों की-सी पोशाक पहन रक्खी है। सा-री-गा-अ-आ-इ करके बुढ़ापे में गाना सीखते हो। उस लठैत के

साथ एक दूसरा स्वाँग किया करते हो। क्या कहना है, होली के स्वाँग बन गए हो। तुम्हारे इन ढोंगों की बदौलत अब मुझे पास-पड़ोस में मुँह दिखाते लाज लगती है—

दमड़ी—मालकिन, तुम फुर-फुर कहति हौ। साह का लूटै के बेर नाहिं जानित क्यतने मनई आवति हैं। झारत-बहारत देर नहीं लागति कि फिरि कचरा ह्वइ जात है।

रावबहादुर—दमड़ी, खबरदार, जो गड़बड़-शड़बड़ बात मुँह से निकाली! तू बड़ी बेशरम है। कहा तक नहीं मानती।

मनिकाबाई—यह आप करते क्या हैं? उस बेचारी ने अभी आपसे कहा ही क्या है? और, वह झूठ क्या कहती है? मैं ही पूछती हूँ, आप अब बुढ़ापे में गाना सीखकर क्या करेंगे?

दमड़ी—अउर वहि लठिहा ते लाठी चलावबु सिखै माँ का मिली? हम तो वहिका मुँहु नहीं द्याखा चहित। आवत द्वार नाहीं लागत की लाठी घुमाय-घुमायकै (घुमाकर दिखलाती है) पाँयन ते धरती खोदि डारत है।

रावबहादुर—शिव-शिव! तुम पर मुझे दया आती है। तुम बिलकुल अजान औरतें हो। तुम्हें इन बातों की खूबी क्योंकर मालूम हो सकती है!

मनिकाबाई—क्या कहना है, हम कुछ भी नहीं समझ सकतीं; क्योंकि औरतें हैं! क्यों न हो, अब आप गाना सीखकर किसी नाटक-कंपनी में नाचने को जायँगे! हाँ, यह तो बतलाइए, लाठी के हाथ सीखकर आप किसके साथ फ़ौजदारी करेंगे? अब आप इन लड़कपन के खेलों को जल्दी छोड़िए। गृहस्थी का कामकाज छोड़कर आप-का मन इन कामों में न-जाने कैसे लग जाता है।

दमड़ी—ए मालकिन, आजु मालिक फिरि एकु पंडितु लिखबु-पढ़बु सिखैं के बरे राखेनि है।

रावबहादुर—इसमें क्या हर्ज है। मेरे-जैसे उपाधि-धारी बड़े आदमी यदि शास्त्रियों से लिखना-पढ़ना न सीखें, तो फिर सीखें ही किससे?

मनिकाबाई—आप इस झंझट में क्यों पड़ते हैं? सीधे हरीराम मास्टर के स्कूल में स्लेट-बस्ता लेकर भर्ती हो जाइए। वहाँ जाने से आपको इस उम्र में इतना तो अवश्य मालूम हो जायगा कि घुटना-टेक होने में कैसा आनंद मिलता है! और—

रावबहादुर—अच्छा, अब तुम यहाँ से निकलो! तुम्हारे मुँह कौन लगे! तेरी-जैसी गँवार औरत की बदौलत ही मैं चार भले आदमियों में सिर ऊँचा नहीं कर सकता। तू तो मुझे, अपनी समझ में, बिलकुल ही मूर्ख समझती और आप होशियार बनती है। यदि तू

चतुर है, तो बतला तो सही कि अब तक जो तू बड़-बड़ करती रही है, उसको क्या कहते हैं ?

मनिकाबाई—यही कि आप अब अपना चाल-चलन सुधारिए। मैंने आपसे और तो कुछ कहा नहीं है—आप क्या सुनते थे ?

रावबहादुर—नहीं, यह बात नहीं। जो तूने अब तक कहा है, उसे फिर कह।

मनिकाबाई—(अकचकाकर) मैंने तो जो कुछ कहा है, सो इसीलिये कि आपका आचरण सुधर जाय। और मुझे क्या करना है ?

रावबहादुर—(बात काटकर) राम-राम, मूर्ख कहीं की ! तू तो बात ही नहीं समझती । अच्छा यही बतला कि मैं किसमें बोला हूँ।

मनिकाबाई—भई, ऐसे पागलों की तरह बड़बड़ाने का क्या मतलब है ? कुछ समझ में भी नहीं आता।

रावबहादुर—पगली कहीं की ! तू बिलकुल मूर्ख है ! (ज़ोर से) हमारे और तुम्हारे बीच जो बातचीत हुई है, उसे क्या कहते हैं ?

मनिकाबाई—अच्छा बतला दूँ, इसे पति-पत्नी का सयानपन कहते हैं।

रावबहादुर—हुश, बड़ी मूर्ख है, कुछ भी नहीं समझ सकती ! बता, इसे और क्या कहते हैं ?

मनिकाबाई—(ऊबकर) और कहते हैं मेरा सिर !

रावबहादुर—(ज़ोर से) गधी कहीं की ! इसे गद्य कहते हैं, गद्य ! अब समझी ?

मनिकाबाई—(आश्चर्य से) क्या कहते हैं ?

रावबहादुर—(कुछ नाराज़ होकर) कैसी गधी से काम पड़ा है। अरी, इसे गद्य कहते हैं। जो गद्य नहीं है, वह पद्य है, और जो पद्य नहीं है, वह गद्य है ! ऐसी-ऐसी बातें ही शास्त्री लोग सिखलाते हैं, जिन्हें तुम समझ ही नहीं सकतीं। (दमड़ी से) ऐ पत्थर, नाम रक्खा है दमड़ी ! तुझमें सचमुच दमड़ी की भी अक़्ल नहीं है। अच्छा, बतला तो सही, 'ओ' का उच्चारण करते समय क्या करना पड़ता है।

दमड़ी—(उत्सुकता से) का कह्यो, वह का उचारत ?

रावबहादुर—'ओ' कहते समय तू क्या करती है ?

दमड़ी—मैं ! मालकिन जब हमका बोलउती हैं, तब हम 'ओ' कहिकै बोलित है। (हँसती है)

रावबहादुर—उँः, तेरी-जैसी देहाती औरत इन बातों को क्या समझे ! तेरा जैसा नाम है, उतनी भी तुझमें अक़्ल नहीं है। अब मैं 'ओ' कहता हूँ। देख, मेरे मुँह की ओर देख। (मुँह की ओर उँगली दिखलाकर) ओ ऽऽऽऽ ! देखो यह उच्चारण कैसा गले और ओठों की सहायता से हो रहा है। इसी से शास्त्रीजी ने इसका कंठौष्ठ

स्थान बतलाया है। मैंने भी इसे रटकर कैसा अच्छा मुखाग्र कर लिया है!

दमड़ी—(हँसती हुई) का? कंठत्था। कंठत्था कि अंगुट्ठा!

रावबहादुर—धत्तेरे की! किसी ने सच कहा है—'बंदर क्या जाने अदरख का सवाद!' तू देहात की रहनेवाली इन खूबियों को क्या समझेगी। अच्छी तरह ध्यान में रख, इसे कंठौष्ठ स्थान कहते हैं।

मनिकाबाई—शाबाश, खूब होशियारी दिखलाई है। अब दिन-दहाड़े मशाल के उजाले में सब जगह आपकी तारीफ़ करनी पड़ेगी, तब कहीं लोगों को मालूम होगा कि आप इतने होशियार हो गए हैं।

रावबहादुर—(चिढ़कर) गँवार देहातिन कहीं की! निकल यहाँ से! ऐसी गँवार औरतों से बकवाद करने की मुझे फ़ुरसत नहीं। चल, निकल जल्दी—

मनिकाबाई—आप इतने नाराज़ क्यों होते हैं? एस ढंगों को छोड़कर उन थूक चाटनेवालों का यहाँ आना-जाना बंद कर दीजिए, और अब—

दमड़ी—(बीच में ही) पहिले वहि मरिगइले पंजाबिया सेठ का आवबु बंद करउ। वहु बहुतु दिक्क करति है।

रावबहादुर—(नाराज़ होकर) क्या कहा, तंग कर रक्खा है? अच्छा मैं पहले तुझी को निकाल बाहर करता

हूँ। तूने समझ क्या रक्खा है ? (मनिकाबाई से प्रेम-पूर्वक) अहा-हा प्रिये, तुमसे क्या कहूँ—

मनिकाबाई—(अचरज से) इन सफ़ेद वालों का तो लिहाज़ करो। यदि मन में झिझक नहीं है, तो इन आदमियों का तो लिहाज़ करो—

रावबहादुर—पगली कहीं की ! पहले सुन तो ले, मैं क्या कहता हूँ

मनिकाबाई—(हाथ हिलाकर) माफ़ करो, मैं नहीं सुनना चाहती। जान पड़ता है, उन बड़े आदमियों की संगति में रहकर तुमने ये चोचले सीखे हैं। मैं ऐसी बातें—

रावबहादुर—बड़े आदमियों में न बैठूँ, तो क्या तेरे उन देहातियों में बैठा-उठा करूँ, जो लँगोटी लगाए घूमते हैं ! इन बड़े आदमियों की सोहबत से मुझे जो फ़ायदा हुआ है, उसे मैं ही जान सकता हूँ। तेरी-सी गँवार औरत क्या जाने ?

मनिकाबाई—हाँ, हाँ, मैं ख़ूब समझ चुकी हूँ, आप भले ही न समझे हों। जब तक आपके पास रुपया-पैसा है, तभी तक वे लोग आपको घेरे हैं, और रावबहादुर कह-कहकर आपको चने के पेड़ पर चढ़ाते हैं ; पर जिस दिन उन्हें आपके पास रुपए की कमी देख पड़ेगी, उस दिन वे मुँह फेरकर देखेंगे तक नहीं। उस दिवालिए आशाराम के—परमेश्वर उसका बुरा करें !—घर में ख़ूब

रुपए भरते जाइए। आते ही वह ऐसी मोहिनी डाल देता है कि आप इस सोच-विचार में पड़ जाते हैं कि इसे क्या दें, और क्या न दें! उस दाढ़ी-जार का कभी भला न होगा—

रावबहादुर—हाँ, हाँ, खबरदार ऐसा न करना। मेरे मित्र को गालियाँ न देना। मैं कभी तेरे इस अपराध को क्षमा नहीं करूँगा। मैं न जानता था कि तेरे मुँह से ऐसे निंदित वाक्य निकल सकते हैं! जानती है, ये गालियाँ तू किसे दे रही है? आशाराम अपने जमाई होनेवाले हैं, यह समझकर भी तू उन्हें कोसती है। मूर्ख, यह नहीं जानती कि मेरा जो बड़े आदमियों के बीच इतना आदर-सत्कार होता है, वे लोग मुझे अपनी बराबरी का समझते हैं, सो सब उन्हीं आशाराम की कृपा का फल है। इसे तू अपने पूर्व जन्म का बड़ा पुण्य समझ कि वह तेरे घर आया करते हैं। उनकी कृपा से ही मुझे बड़ी-बड़ी सभाओं में सरदारों और रईसों के बराबर बैठने को कुर्सी मिलती है—

मनिकाबाई—कुर्सी मिलती है, तो उसे सिर पर बिठाले रहो। रोकता कौन है? पर गृहस्थी को लुटाते समय—

रावबहादुर—पगली, तेरी खोपड़ी में कुछ पागलपन ज़रूर समा गया है! मैं उसे यों ही रुपए-पैसे कब दिया करता हूँ? वह तो मुझसे रुपए उधार लेता है। और, मेरी भी इस बात में शोभा है कि एक ऐसा इज़्ज़तदार

आदमी मेरा क़र्ज़दार है। लेन-देन के व्यवहार को हम मर्द ही जानते हैं; तुम औरतें क्या समझो-बूझो।

मनिकाबाई—सच है, मैं औरत की जाति भला क्या समझ सकती हूँ। जो समझती होती, तो ऐसा होता ही क्यों! अच्छा मैं यह पूछती हूँ कि उसे तुम रुपए देते तो हो, पर कुछ दस्तावेज़ वग़ैरह भी लिखवाते हो, या वह कुछ गिरों भी रख जाता है?

रावबहादुर—हुश, यह बिलकुल पागलपन है। क्या बड़े आदमी भी काग़ज़-पत्र लिखा करते हैं? फिर महाजनों और मामूली आदमियों में फ़र्क़ ही क्या रह जायगा? आशाराम तो कहते थे कि बड़े आदमियों का व्यवहार बिलकुल ही गुप्त रहना चाहिए। यहाँ तक कि इस कान की ख़बर उस कान को भी न हो। और, यह है भी बिलकुल सच।

दमड़ी—पै साहु—

रावबहादुर—बेशरम, फिर वही बात! तू अभी यहाँ से निकल जा! मैं अपने घर में ऐसी बेवक़ूफ़ टहलुई नहीं रखना चाहता। अगर तूने फिर कभी यहाँ पैर रक्खा, तो तेरी टाँग तोड़ दूँगा।

मनिकाबाई—क्यों बेचारी को धमकाकर मारे डालते हो! किसी को इस तरह धमकाया मत करो। (दमड़ी से) तू भीतर जा, यहाँ क्या करती है?

रावबहादुर—तेरा मुँह बहुत बड़ा हो गया है। मैं अपने घर में चाहे जो करूँ, तू टोकनेवाली कौन होती है? और, (स्त्री से) तू ही क्या समझे बैठी है, अगर गड़बड़ करेगी, तो तुझे भी निकाल बाहर करूँगा! (दमड़ी से) निकल यहाँ से! अगर फिर कभी यहाँ पैर रक्खा, तो—

[दमड़ी को मारने दौड़ता है, वह भागती है। रावबहादुर पीछा करता है

मनिकाबाई—अब तो ग़ज़ब हो गया। इनको रास्ते पर लाने की ज्यों-ज्यों कोशिश की जाती है, त्यों-त्यों यह और भी पागलपन के काम करते हैं। जी नहीं मानता, इसी से कहती हूँ। पर इनका सुधरना तो दूर रहा, यह और भी उलटा आचरण करते हैं। अगर मेरी इज़्ज़त-आबरू का इस तरह बर्बाद होना ही क़िस्मत में लिखा है, तो मैं कर ही क्या सकती हूँ।

[जाती है

दूसरा दृश्य

स्थान—रामबाई का घर

[रामबाई एक आराम-कुर्सी पर लेटी हुई पुस्तक पढ़ रही है। बैठक के दरवाज़े के पास किंवाड़ों की आड़ में खड़ा हुआ भगुवा आहट ले रहा है]

भगुवा—(स्वगत) पहिले आलाराम केरि चिट्ठी यहि-

का दइकै फिरि मालती के हियाँ जइबे। मालिक कै चिट्ठी मालती का औ मालती कै चिट्ठी मालिक का—यही धावा-लेई माँ कगदन कै घुड़दउर मची है। यही धूम-धड़ाका माँ यहु पट्ठा अपनो मतलबु निकारि लेई। हमारि औ दमड़ी की जहाँ गाँठि जुरी, तहाँ फिर अनंदै-अनंद है! मुदा हे भगुवा, जो त्वँ यहु सब समै बातन माँ लगाय देहे, तौ-आधे घंटा माँ मालिक के पास ककस लउटिकै जइहे? चलु, उठु, झट्ट-पट्ट अपन कामु करु, औ दमड़ी के घर कै राह ले; काहे ते कि दुइ दिन ते वहिते भ्यॉट नहीं भै। को जानै, क्यहि तना ते व्वालै। चलु जल्दी, अपन कामु करु। (दाहनी जेब से थैली निकालता है) यहिकी अइसी-तइसी करों। दमड़ी के ख्याल माँ परिकै अब नहीं जानि परत कउनि चिट्ठी आय कउनि न आय! हाँ, आसाराम तौ यहै दीन्हेनि रहै (कुछ विचारकर) मुदा जउनि हमारि मालिक दीन्हेनि रहै, वहै तौ यह न आय। मालिक दीन्हेनि रहै, वह तौ बाईं थैली माँ—नाहीं-नाहीं—दहिनी थइली—नाहीं-नाहीं, अरे यहिकी अइसी-तइसी, वहु भूलि गयन। अब का करी, का न करी। (दोनों चिट्ठियाँ उलट-पलटकर बड़ी बारीकी से देखता और बार-बार स्मरण करता है) वहै कर-मुँही दमड़ी यहु सब कामु बगारा है। (चिट्ठियों को देखकर) अरे बताओ, तुम कउनि केहिकी आहिउ? (दरवाज़े के पास आकर ठहरता है। इतने में भीतर से रामबाई का शब्द सुन

पड़ता है) अरे सुनौ तौ, भीतर कउनि बातचीत ह्वै रही है। हम का करी, परखिया लागै कै हमारि ठ्याँवै परि गै है। हमार कान अइसि उजड्ड ह्वइ गे हैं कि हमार कउनौ उपाउ नहीं चलत। इनका जो न सुनै का चही, वहु सुनत हैं! जब इनके ऊपर हमार कउनौ उपाउई नहिंन, तौ अब कान कतरिकै बहिरि काहेका बनी ! (किंवाड़ की आड़ में कान लगाकर सुनता है)

रामबाई—(उपन्यास का अगला भाग पढ़ती है) "पर यह दुष्ट कंजूस मरता ही नहीं। छिः, वह कुछ नहीं है ! इस समय हृदय में दया को स्थान न देना चाहिए। जैसे बने, इस काँटे को निकाल ही डालना चाहिए। अब तो पक्का निश्चय हो चुका। रसोइए को अपने वश में करके विष दिलवाकर इसे खतम ही करवा दूँ। फिर सारी जायदाद के मालिक हमीं—"

भगुवा—(स्वगत) यहिकी अइसी-तइसी। यह मेहरिया बड़े कर्रे करेजे की है। यह राँड़ अब कोहू क्यार खूनु करी। अब सब बातैं हम जानि गयन। उन आसाराम के काका का यह जहरु दइकै मारै का बिचारु कीन्हे है। (दरवाजा खोलकर भीतर घुसता और ज़ोर से डपटकर कहता है) काहे, नेतराम का जहरु दइकै मारै का बिचार कीन्हेव है ! तुम का समुझे बइठी हौ ? अब हीं हम कोतवाली माँ जाइत है, अउर भंडाफोर कीन्हे देइत है ! अइस खराब

काम करै माँ तुमका डेरु नहीं लागत ? तुम धरम-करम का—

रामबाई—(अकचकाकर और पुस्तक की ओर देखकर) मूर्ख, बुद्धिहीन, छिपकर दूसरे की बातें सुनने की तुझे बुरी लत पड़ गई है । देख, अब तुझे कैसा मज़ा चखाती हूँ। मैं तो क़िस्सा पढ़ रही थी । तू मुझे धमकाने आया है ! पहले तुझे पुलिस के हवाले करना चाहिए—

भगुवा— (डरकर पैरों पर गिरता है) सरकार, हम तौ झूठ-मूठ कै हँसी कीन रहै । हमका माफ करौ ।

रामबाई— (हँसकर) गधे, अब मुकरता है । अच्छा, कान पकड़कर दस दफ़े उठ और बैठ ।

भगुवा—मालकिन जउनि भूल भै, तउनि भै । अब हम यहि तना का कामु कबहूँ न करब । परखिया लागै कै हमारि बड़ी खराब ट्याँव परि गै है । (मालती के नाम का पत्र रामबाई को देता और कान पकड़कर उठता-बैठता है)

रामबाई—(हँसकर) अच्छा, अब माफ़ कर दिया । यह चिट्ठी मेरी नहीं है । यह तो मालती की है ।

भगुवा—लाओ, यह ससुरी हमका देव, अउर यहिका चाखव । (दूसरा पत्र देता और दुबारा उठता-बैठता है)

रामबाई—(भगुवा से) बस-बस, अब ज़्यादह गड़बड़ मत कर । जा, अपना काम कर ।

[भगुवा लंबा सलाम करके जाता है

रामबाई—(पत्र पढ़कर) जब देखो, तब आप उस रावबहादुर की पीठ से चिपके रहते हैं। कहते हैं, परसों उसे अभिनंदनपत्र दिया जानेवाला है, और इसी गड़बड़ में उलझे रहने के कारण यहाँ आने के लिये समय नहीं मिलता । रोज़ एक-न-एक कारण मिल ही जाता है । और आगे क्या लिखते हैं। (फिर पत्र पढ़ती है) "मैं कल और आज आपके दर्शन करने नहीं आ सका, और अभी दो दिन और भी फुरसत नहीं मिलेगी। इसका मुझे खेद है। कदाचित् आप मेरे ऊपर रुष्ट हो गई हों । किंतु मुझे आशा है कि जब आपको इस कमी का पूरा-पूरा बदला मिल जायगा, तब आप अवश्य प्रसन्न हो जायँगी । इस शनिवार को रेलवे-थिएटर में 'सुंदरी-हरण' नाम के प्रसिद्ध नाटक का अभिनय होनेवाला है। मैंने अभी से छः टिकट रिज़र्व करा लिए हैं । अतएव आप शनिवार को खेल देखने के लिये आने की अवश्य कृपा करें । मैं साढ़े सात बजे वहाँ पहुँच जाऊँगा । रावबहादुर गिरधारीसिंह के घर से भी लोग वहाँ आवेंगे। बहुत ही अच्छा हो, यदि सब लोग एकसाथ नाटक देखें ।" वाह, मुझे समझाने की अच्छी युक्ति ढूँढ़ी है। बहुत दिन से मेरी यह इच्छा है कि हीरा की सहेली मालती से किसी प्रकार जान-पहचान हो जाय । मैंने उसे एक वार बुलवाया भी था ; पर वह आई नहीं । अब इस नाटक के बहाने वही

काम कराया जा रहा है ! मुझे प्रसन्न करने के लिये कैसे-कैसे काम किए जा रहे हैं। ज्यों ही खबर मिली कि मुझे अमुक चीज़ पसंद है, त्यों ही दिन डूबते-न-डूबते वह चीज़ मेरे पास भेज दी जाती है। मैंने कई बार समझाया कि यों पानी की तरह रुपए-पैसे न बहाओ, सोच-समझ-कर काम करो; पर सुनता कौन है। मेरी 'सुंदरी-हरण'-नाटक देखने की इच्छा का पता पाकर उन्होंने देखो चटपट टिकट खरीद लिए। आहा ! कैसा गहरा प्रेम है। परसों प्रेम की निशानी यह अँगूठी दी है। (हाथ की अँगूठी को देखती है) यह ढाई-तीन हज़ार से कम की नहीं हो सकती। मैंने पूछा कि इतनी क़ीमती क्यों बनवई, तो उत्तर मिला—"तुम्हारे लिये दो हज़ार की तो क्या, दो लाख की भी पर्वा नहीं।" ऐसा खर्चीला स्वभाव अच्छा नहीं होता। अरे, पाँच बज गए ! किंतु न अब तक तारा आई, और न गजरा ही। उन्हें तो बहुत पहले आ जाना चाहिए था। कहीं ऐसा न हुआ हो कि मेरे हाथ में पत्र देखकर वे यहीं कहीं छिप गई हों। वे बड़ी हँसोड़ हैं। अच्छा, तो अब उनको ढूँढूँ।

[जाती है

तीसरा दृश्य

स्थान—रावबहादुर की लाइब्रेरी

[रावबहादुर एक टेबिल के पास हाथ में वह काग़ज़ लिए बैठा है, जिसमें अभिनंदनपत्र का उत्तर लिखा है। इसी को वह इस समय कंठ कर रहा है]

रावबहादुर—(पढ़ता है) प्रिय भगिनियो और भ्राताओ, आप बड़े-बड़े सेठों, साहूकारों, ज़मींदारों, प्रसिद्ध वकीलों, बैरिस्टरों, प्रख्यात डॉक्टरों, ओहदेदारों और पत्र-संपादकों ने अपने समय और द्रव्य का उपयोग करके, मुझे पार्टी देकर, मेरा जो सम्मान किया है, उससे मुझे बड़ा संतोष हुआ। मुझे अपने हृद्गत भाव को व्यक्त करने के लिये भाषा में उपयुक्त शब्द ही नहीं मिलते। इसी से आप कल्पना कर सकते हैं कि मुझे कितना आनंद हुआ है। (स्वगत) इस समारोह के खर्च के लिये एक हज़ार की रक़म तो मेरी ही गाँठ की लगी है। (आगे पढ़ता है) और आज इस आनंददायक अवसर पर 'निराश्रित मंडल' के बालकों ने सुरीले, मनोहर भजन गाकर मुझे आप्यायित किया है। (स्वगत) इन पदों की रचना कराने में मुझे कविवर 'फक्कड़राय' की जितनी खुशामद करनी पड़ी है, सो मैं ही जानता हूँ। वह ज़िद कर रहा था कि १००) रु० ही पुरस्कार लेंगे। इससे कम पर वह कविता बना देना

स्वीकार ही न करता था। मैं लाचार था; क्योंकि ऐसे समारोह में पढ़े जाने के लिये कविता होनी ही चाहिए। जब उसने ज़िद न छोड़ी, तब १००) ही उसके सिर से मारे। (फिर आगे पढ़ता है) जिस खूब चिकने कागज़ पर सुनहरी स्याही से छपे हुए मनोहर मज़मून में आपने मेरे गुणों का बखान किया है, उसको मैं सादर स्वीकार करता हूँ। और, शीघ्र ही, जब मुझे इससे भी बढ़कर उपाधि मिलेगी, तब आप आज से भी अधिक उत्साह से, द्रव्य लगाकर, मुझे अभिनंदनपत्र तथा पार्टी देकर आज की अपेक्षा कहीं अधिक सम्मानित करेंगे, इस बात की मुझे दृढ़ आशा है। अब मैं आप लोगों का अधिक समय नष्ट नहीं करना चाहता। (स्वगत) यह उत्तर कैसा अच्छा है। आज लगातार आठ दिन से मैं इसे रट रहा हूँ। किसी को क्या खबर कि इसके लिखाने में मुझे कितना यत्न करना पड़ा है, कितने आदमियों के चरणों पर नाक रगड़नी पड़ी है। कल रात को बारह बजे उस स्वदेशोद्धारक कंपनी— उस 'दुंदुभि'-नामक मासिक पत्र ने क्या नाम रक्खा है? हाँ, (याद करके) अच्छी याद आ गई; आशारामजी के उपदेश से मैंने अपनी डायरी में वह नाम लिख लिया है। (पाकेट से डायरी निकालकर देखता है) ऐं, यह क्या नाम है! "अहो रूपमहो ध्वनिः—परस्पर सहायक मंडली!" भई, इसका क्या अर्थ होगा? कैसा अच्छा नाम है! इसका

अर्थ बहुत ही कठिन होगा, अब इसे जाने दो। सबेरे जब शास्त्रीजी आवेंगे, तब उनसे पूछूँगा।—हाँ, तो उस मंडली के द्वारा होनेवाली सभा में और राय कौड़ियाजी के सभापतित्व में मुझे अभिनंदनपत्र दिया जानेवाला है। इस सभा में जो कुछ खर्च होगा, वह मेरी तरफ़ से परम मित्र आशारामजी अपने नाम से करेंगे, और नाम होगा कंपनी का! विना ऐसा किए जन-साधारण को कैसे मालूम होगा कि रावबहादुर गिरधारीसिंह भी कोई बड़े आदमी हैं। बड़े आदमियों को ऐसा ही आचरण करना चाहिए—

[इतने में आशाराम आता है

आशाराम—(भीतर आकर) रावबहादुर साहब, जान पड़ता है, कल का अभिनंदनपत्र ग्रहण करने के लिये आपने यह तैयारी की है। सचमुच इस पोशाक में आप बहुत ही भले देख पड़ते हैं। आप इस समय इतने खूब-सूरत जचते हैं कि यदि इस फ़ैशन में आपको रामबाई देख ले, तो उसके—उसी के क्या, उससे भी अधिक परम रूपवती तरुणी के—हृदय में आप तीर की तरह प्रवेश कर सकते हैं!

रावबहादुर—(मारे ख़ुशी के फूलकर मूछों पर ताव देता है) किंतु अभी तो मैंने वह स्प्रिंगदार चश्मा लगाया ही नहीं। (चश्मा लगाता है, किंतु वह गिर पड़ता है। फिर लगाता और फिर भी गिरता है) अजी, यह बार-बार क्यों गिरता है?

क्या उलटा हो गया ? (उलटा लगाता है) भई, यह तो अब भी ठीक नहीं लगा। (आशाराम चश्मा लगाने में रावबहादुर को मदद देता है) यह देखिए, कल मैं दीनानाथ बैरिस्टर के साथ सदर गया था। वहाँ उन्होंने एक चश्मा ख़रीदा। मुझसे कहने लगे कि जो लोग भले आदमियों के बीच अपनी इज़्ज़त कराना चाहते हों, उन्हें ऐसा कमानीदार चश्मा ज़रूर लगाना चाहिए। मुझे भी उनकी बात ठीक जची। इतने में कंपनी के गोरे मैनेजर ने उम्दा सुनहरी फ्रेम का चश्मा अच्छी तरह काग़ज़ में लपेटकर मुझे ला दिया। अभी तो बिल भी नहीं आया। फ़ुरसत के वक़्त भेजेगा। जब चश्मेवाले की कंपनी के गोरे मैनेजर ने विश्वास-पूर्वक मेरा इतना सम्मान किया, तो मुझे भी उसकी बात रखनी चाहिए। ले आया हूँ, यह ऐसे ही अवसर पर काम देगा।

आशाराम—बैरिस्टर साहब ने आपको सचमुच नेक सलाह दी, और खुशी की बात है कि आपने मान भी ली; क्योंकि आजकल नज़र के निर्दोष रहने पर भी चश्मा लगाने का फ़ैशन है। और, चश्मा लगाने लगो, तो शीघ्र ही नज़र कमज़ोर हो जाती है, इससे हमेशा चश्मा लगाए रहने का सौभाग्य प्राप्त होता है! (स्वगत) इस पागल को फ़ैशन के बहाने चाहे जैसा नाच नचाओ, इसे ज़रा भी संदेह नहीं होने का। इसके सिर पर

फ़ैशन का भूत सवार है, सो यह दिन-रात फ़ैशन की ही धुन में रहता है। संसार में गोया इसे और कुछ काम ही नहीं। यह बात मेरे लिये अत्यंत हितकारी है; क्योंकि जो संसार में ऐसे पागल न हों, तो हम लोगों की गुज़र कहाँ से हो? आज मुझे दो सौ रुपए की सख़्त ज़रूरत है। जैसे बने, २००) देकर उस दानमल मारवाड़ी का मुँह बंद करना है। मैं इस समय इन्हीं हज़रत से रुपए वसूल करने आया हूँ। मौक़ा भी अच्छा मिल गया। बस, अब शाबाशी देकर काम बना लेना है। (प्रकट) अच्छा रावबहादुर साहब, यह तो बतलाइए कि आज तक आपके यहाँ से मेरे यहाँ कितना रुपया गया है?

रावबहादुर—इस बात के जानने की तुम्हें ऐसी क्या ज़रूरत आ पड़ी?

आशाराम—ज़रूरत तो नहीं है, पर व्यवहार सदा खरा रहना चाहिए। आज हमारी और आपकी दोस्ती है, ईश्वर न करे, यदि कल कुछ अन-बन हो जाय, तो पीछे से नाहक़ झंझट होगा, और सब लोग हँसेंगे। इसी से कहता हूँ कि व्यवहार सदा खरा रहना चाहिए। यदि मेरे हाथ का कोई दस्तावेज़ आपके पास न हो, तो एक हैंड-नोट ही सही।

रावबहादुर—आशारामजी, आज तुमको हो क्या गया है, जो ऐसी बे सिर-पैर की बातें कर रहे हो? हमारी-

तुम्हारी दोस्ती में कभी फ़र्क़ नहीं पड़ सकता—स्वप्न में भी अन-बन नहीं हो सकती। मैं तुमसे कुछ भी नहीं लिखवाना चाहता। क्या मैं तुम पर विश्वास नहीं करता ?

आशाराम—अच्छा, तुमने कहीं बहीखाते में मेरे नाम रक़म चढ़ा रक्खी है, या नहीं ? ज़बानी जमा-खर्च मैं ठीक नहीं समझता।

रावबहादुर—(घमंड से) तो क्या तुमने मुझे कच्चे दिल का बनिया समझ लिया है ? मैं ऐसा कच्चा और गड़बड़ करनेवाला महाजन नहीं हूँ। यह देख लो, (डायरी दिखलाता है) मैंने अपनी डायरी में सब सिलसिलेवार लिख लिया है।

आशाराम—(पढ़कर, स्वगत) गधे, तेरी इस दो कौड़ी की डायरी पर कौन नासमझ विश्वास करेगा ? तू मनमानी रक़म भले ही लिखा कर, मना कौन करता है। मुझे इसकी बिलकुल पर्वा नहीं है। (प्रकट) परंतु रावबहादुर साहब, आपने मेरे नाम से सर डू नथिंग साहब के स्मारक-फ़ंड में जो ३००) दिए थे, वे कहीं मेरे नाम नहीं डाले। पहले उन्हें लिखिए, तब और बात होगी।

रावबहादुर—हाँ, भूल तो ज़रूर हुई (लिखता है)। ख़ैर, मैं भूल गया, तो क्या हुआ, आप तो नहीं भूले ! सच्चे आदमियों का काम ऐसा ही खरा होता है।

आशाराम—मुझे किसी की अधर्म की एक पाई भी न

चाहिए। अगर मेरी नीयत ऐसी बद होती, तो आप इतनी बड़ी रक़म मुझे देते ही क्योंकर ! मैं पीठ-पीछे बात कहने-वाला आदमी नहीं हूँ। क्यों, सच है न ?

रावबहादुर—तुम्हारी जोड़ का सच्चा आदमी अब तक मेरे देखने में नहीं आया। यह बात मैं क़सम खाकर कह सकता हूँ।

आशाराम—मैं क्या कह रहा था अभी ? (कुछ याद करता है) हाँ, आज तक मैंने शायद आपके यहाँ से ६५१०) लिए हैं। अच्छा, देखिए तो सही नोट-बुक में, जोड़ ठीक होता है कि नहीं। मुझे तो यों ही उड़ती-सी ख़बर है—

रावबहादुर—(जोड़कर) छिः, केवल ६२५०) हुए हैं, ६५१०) नहीं—

आशाराम—यह मेरा याद न रखने का स्वभाव जहाँ-तहाँ मेरी फ़ज़ीहत कराता है ! अरे, मेरी नोट-बुक कहाँ गई ? (पाकेट टटोलता है) इससे कुछ फ़ायदा न होगा। अच्छा ६२५०), अर्थात् सवा नौ हज़ार हुए। एक काम कीजिए। मुझे ७५०) और दे दीजिए, ताकि पूरे दस हज़ार हो जायँ। इससे पूरा-पूरा हिसाब हो जायगा। मुझे और आपको, दोनों को इसमें सुबीता है। (कान में कहता है) उस फ़ंड में मुझे आज ही पाँच सौ रुपए देना है। आप भी उसमें हज़ार-पाँच सौ रुपए दे दें, तो इससे आपकी

तारीफ़ हिंदुस्तान को नाँघकर विलायत तक पहुँचेगी ! बस, काग़ज़-क़लम लाइए । एक आने का टिकट आपके पास होगा ही । दस हज़ार का प्रामिसरी नोट अभी लिखे देता हूँ । आज खा-पीकर ज़रा जल्दी तैयार हो जाइएगा; क्योंकि कल सवेरे जो सभा होने-वाली है, उसका निमंत्रण देने के लिये कुछ भले आद-मियों के घर गाड़ी लेकर स्वयं आपको चलना पड़ेगा । मैं सात बजे के पहले ही आ जाऊँगा । आजकल इस शहर में शिवपुर के महाराज कुमार ज़बरसिंहजी आए हुए हैं । उनके दीवान साहब से मेरी खूब जान-पहचान है । किसी दिन मौक़ा पाकर आपको कुँअर साहब से मुलाक़ात कर आना चाहिए ।

रावबहादुर—बहुत अच्छा, ज़रूर जाऊँगा । तो मुझे कुँअर साहब से मिलाने कब चलोगे ? जल्दी निश्चय करो । (संदूक खोलकर दो हज़ार के नोट निकालता है) ये नोट लो । मेरे पास रुपए नहीं हैं । ये हज़ार-हज़ार के नोट हैं । इसमें से साढ़े सात सौ तुम ले लो, और एक हज़ार मेरे नाम से उस फ़ंड में भेज दो—हाँ, तुम्हें विश्वास है न कि मुझे कुछ खिताब ज़रूर मिलेगा ? बाक़ी ढाई सौ रुपए मुझे सवेरे लौटा देना । अगर सवेरे न हो सके, तो फिर कभी सही, कुछ जल्दी नहीं है । प्रामिसरी नोट लिखने की भी कुछ ज़रूरत नहीं । क्या

मैं तुम पर विश्वास नहीं करता? (धीरे से) उस काम में कहाँ तक सफलता हुई?

आशाराम—(पाकेट में नोट रखता हुआ) अँः, उसका क्या कहना है? (रावबहादुर के हाथ पर हाथ ठोककर) काम फ़तह समझिए। क्या आप यह जानते हैं कि जहाँ मैं हाथ डालूंगा, वहाँ सफलता न होगी? मगर रावबहादुर साहब, आपसे क्या कहूँ, बड़ी-बड़ी मुशकिलों से सामना करना पड़ा। अंत को बड़ी कठिनाई से उसने स्वीकार किया। मैंने आपकी अँगूठी और पत्र उसे बड़ी सावधानी से दिया। उसने प्रसन्नता-पूर्वक अँगूठी ले ली, और लगे-हाथ पहन भी ली। उसने आपकी बड़ी प्रशंसा की, और फिर मन लगाकर पत्र पढ़ा। अंत को मेरी ओर देखकर मुसकिरा दिया। इस लक्षण से अब आप काम सिद्ध ही समझिए।

रावबहादुर—(आनंद से) क्या कहा, प्रेम से मेरा प्रेम-पत्र पढ़कर अगूठी पहन ली? आहाहा! संसार में अब मेरे सदृश भाग्यशाली पुरुष और कौन होगा! वह सुंदरी मुझे अवश्य ही जयमाला पहनावेगी। (घमंड से) इसमें संदेह नहीं कि मेरे-जैसे रावबहादुर की (मूछों पर ताव देता है) पत्नी होने में उसे अपना अहोभाग्य समझना चाहिए। रामबाई के साथ पुनर्विवाह हो जाने पर मैं इस देहाती गँवार स्त्री से बात भी न करूँगा। इसे सदा

गाँव में ही रक्खूँगा, यहाँ कभी न आने दूँगा। हाँ, उससे हमारी मुलाक़ात क्योंकर होगी ? आपने कुछ युक्ति सोची है ?

आशाराम—मैंने बहुत आग्रह किया ; मगर वह बहाना करने लगी। आप ही न सोचिए, वह एकदम मुलाक़ात करने को किस तरह राज़ी हो सकती है ! पर मैं उस्ताद ही काहे का ! एक तरह से बात पक्की कर आया हूँ। शनिवार की रात को, आठ बजे, वह यहाँ अवश्य आवेगी। हाँ, आपको अपना काम ख़ूब सावधानी से करना चाहिए। देखना, कहीं जल्दी में कुछ बेजा हरकत न कर बैठिएगा। यद्यपि वह आपको चाहती है, तथापि इस बात को वह एकाएक प्रकट न करेगी। सब काम बड़ी होशियारी से करना पड़ेगा। (धीरे से) अच्छा हो, यदि उस समय आपके घर के लोग यहाँ मौजूद न रहें—उन्हें कहीं टाल दिया जाय। और, मालती भी न हो।

रावबहादुर—भई, मैं किसी कच्चे गुरू का चेला नहीं हूँ ! मैंने पहले ही से पूरा-पूरा प्रबंध कर लिया है। मेरा दूर के रिश्ते का एक भतीजा गोलागंज में रहता है। उसे सत्यनारायण की कथा करानी है। मेरी बात को वह टाल नहीं सकता। बच्चाजी परसों ही १०) रु० उधार ले गए हैं। मैं उससे शनिवार की रात ही को कथा कराने को कहता हूँ। बस उसके यहाँ निमंत्रण में मालती और

उसकी मा को भेज दूँगा। उसे वहाँ जाना ही पड़ेगा—इसमें वह मीन-मेख नहीं निकाल सकती। उधर भतीजे से कह दूँगा कि इन्हें रात को लौटने में कष्ट होगा, इसलिये वहीं रहने देना, सबेरे बुलवा लूँगा। कथा-वार्ता होने और खाने-पीने में ११-१२ बज जायँगे। इतनी रात को फिर वह क्यों आने लगी!

आशाराम—क्या कहना है! आपने भी बहुत बढ़िया उपाय सोचा है। देखना, कहीं शनिवार को न भूल जाना। और, तैयारी ऐसी रखना कि ज़रा-सी भी कमी न रहे। लो, अब मैं जाता हूँ।

[जाता है

रावबहादुर—(मूछों पर हाथ फेरकर) अंत को यह सुयोग मिल ही गया। ओफ़, आशाराम ने मुझ पर अनंत उपकारों का बोझ रख दिया। अब मैं इस ऋण का बदला कैसे चुका सकूँगा। इन्हीं की कृपा से मुझे यह सौभाग्य प्राप्त होनेवाला है; नहीं तो और कोई उपाय न था। बस, अब तो मैं 'रामबाई-रामबाई' का ही जप किया करूँगा। प्रिये, राम—

[दमड़ी आती है

दमड़ी—(बड़ी देर से किंवाड़ों की ओट में खड़ी सब बातचीत सुन रही थी) साहजी, अब हम अपने घरै जाइत है। साह—

रावबहादुर—(चौंककर, स्वगत) कहीं इस राँड़ ने

हमारी बातचीत तो नहीं सुन ली ! (प्रकट) क्योंरी चुड़ैल, क्या है ? छिपकर दूसरों की बातें सुनती है—

दमड़ी—हाँ, हमारि यह खराब ठ्याँव नाहिन । हम अपने घरै जाइत है । हमारि तनखाह दइ देव ।

रावबहादुर—(स्वगत) चुड़ैल ने कहीं सुन न लिया हो ! (प्रकट) क्यों री, फिर तूने साह कहा ? यह ले अपनी तनख्वाह—

[दमड़ी तनख्वाह लेने को आगे बढ़ती है, रावबहादुर उसके सिर को दीवार से टकरा देता है । वह रोती हुई भीतर जाती है, और रावबहादुर उसको खदेड़ता है

चौथा दृश्य

स्थान—रावबहादुर की बैठक

[आरामकुर्सी, टेबिल आदि यथास्थान रक्खे हुए हैं । उम्दा कालीन बिछा हुआ है । तानपूरा और हारमोनियम आदि संगीत का सामान भी मौजूद है । दुशाला ओढ़े मालती और मनिकाबाई गुप्त रूप से प्रवेश करती हैं । दोनों बड़ी सावधानी से चारों ओर देखती जाती हैं]

मनिकाबाई—(हड़बड़ाकर) मालती, यहाँ आने में देर तो नहीं हो गई ? बड़ी शान से सज-धजकर आज सरकार सभा में गए थे । जान पड़ता है, अभी तक लौटे नहीं ।

मालती—नहीं । (घड़ी की ओर देखकर) अभी यहाँ पर

रामबाई और आशाराम के आने में आध घंटे की देर है। किंतु जो इसी समय बप्पा आ जायँ, तो !

मनिकाबाई—(हँसकर) मेरी दमड़ी सचमुच बड़ी ईमानदार है । अच्छा हुआ, जो उसने उनकी सारी बातचीत छिपकर सुन ली । वह भ्रष्टा रामबाई उस आशाराम के साथ ऐसे समय आवेगी, जब यहाँ बिलकुल सन्नाटा रहेगा। उस समय सरकार उसके साथ तरह-तरह के चोचले करेंगे। अच्छी युक्ति सोची थी ! इन दाढ़ी-जारों ने खूब सलाह कर रक्खी है ! कथा के बहाने हमें दूसरी जगह खदेड़कर सरकार बाहर गए हैं। अच्छा, अब देखे लेती हूँ । जो तुम्हारे रंग में भंग न कर दूँ, तो मेरा नाम नहीं ! उस आशाराम के साथ घंटों काना-फूसी हुआ करती है। देखती हूँ, अब किस तरह दूसरी शादी करते हैं। झोंटा पकड़ धक्के देती हुई उसे बाहर कर दूँगी। अच्छा, मालती, तू यहीं ठहर । अभी किसी को यह खबर भी नहीं कि हम घर लौट आई हैं । मैं इस बग़लवाली कोठरी में बैठती हूँ । लोगों के आने की आहट मिलते ही मुझे खबर देना। अच्छा।

[जाती है

मालती—(स्वगत) रामबाई के संबंध में बप्पा के विचार बिलकुल व्यर्थ हैं । मैं अम्मा को कितना ही क्यों न समझाऊँ, वह मेरी एक न सुनेंगी । उन्हें यह

विश्वास हो ही नहीं सकता कि रामबाई आशाराम को दिल-जान से चाहती है। अम्मा को डाह ने अंधा कर दिया है। समझा-बुझाकर असल बात पर उन्हें विश्वास कराना असंभव है। (हँसकर) आध घंटे में ही यहाँ एक विचित्र दृश्य का अभिनय होनेवाला है। और, अगर अम्मा को इसी तरह संदेह बना रहेगा, तो और भी मज़ा होगा। इस समय सच बात प्रकट करने में विशेष लाभ है भी नहीं। यहाँ मज़ा ही देखने में आवेगा। (चारों ओर देखकर आँचल के छोर से चिट्ठी खोलती है) आहा, यह मेरे प्राणेश्वर का पत्र है। मैं इसे सौ बार पढ़ चुकी, फिर भी जी नहीं भरता। मुझे प्राप्त करने के लिये जो उपाय सोचे और किए जा रहे हैं, उन्हें देख-सुनकर कौन हँसी को रोक सकता है ? मुझे बार-बार इस बात की ताक़ीद की गई है कि खबरदार, इस संबंध में एक भी बात मा से न कहना ; नहीं तो नए सिरे से दूसरा प्रपंच रचना पड़ेगा। भंडा फूटना अच्छा नहीं। परंतु अब यह होगा कैसे ? (कुछ विचार-सा करके) अरे! उपाधि के लोभ में फँसे हुए बेचारे पिताजी को इस प्रकार के भ्रम-जाल में कपट करके फँसाना क्या पातक नहीं है ? परंतु अपने प्रियतम के लिये मैं इस षड्‌यंत्र में भी सम्मिलित हो गई हूँ। भगवन्, मेरे पिता को आपने इस उपाधि के

मिथ्या-जाल में क्यों फँसा रक्खा है ! जहाँ दस-बीस आदमियों का जमाव होता है, वहीं मेरे पिताजी की अवज्ञा-पूर्वक चर्चा हुआ करती है । सर्वत्र मेरे पिता ही की आलोचना हो रही है । यह देख-सुनकर मुझे अपार दुःख होता है । आशाराम का ध्यान जो रामबाई पर न होता, तो आज न-मालूम मेरी क्या दुर्दशा हो गई होती ! मेरे प्राणवल्लभ, आप आशाराम और रामबाई की सहायता से पिताजी को भुलावे में डालकर अपना काम सिद्ध करने जा रहे हैं; किंतु स्वयंवर की यह प्रणाली बिलकुल ही नई है । (हँसती है) विवश होकर मुझे भी इस कपट-अभिनय में सम्मिलित होना पड़ता है । उपाधियों के उत्पात से पिताजी की आँखों पर जो परदा पड़ गया है, उसे ऐसा ही कोई उपाय हटा सके तो हटा सके, अन्यथा वह न-जाने इस पागलपन में क्या कर बैठें । (कुछ सोचती है) अब मज़ा इसी में है कि अम्मा को कोई बात सुनाई ही न जाय ; नहीं तो बड़ी गड़बड़ हो जायगा । अब जो अभिनय होनेवाला है, उसमें इससे और भी मज़ा होगा । (हाथ के पत्र को देखकर) आहा, पत्र किस खूबी से समाप्त किया गया है । (पत्र को चूमती, और बाहर किसी की आहट पाकर चौंकती है) जान पड़ता है, गाड़ी आ गई । (खिड़की की राह से झाँककर देखती है) यह लो, आशाराम

और रामबाई की जोड़ी तो दाख़िल हो गई। मगर बप्पा कहाँ रह गए? वह तो अभी तक नहीं आए। अच्छा, अब भीतर अम्मा से कह आऊँ।

[जाती है]

(दूसरी ओर से आशाराम और रामबाई, दोनों बात-चीत करते हुए प्रवेश करते हैं)

रामबाई—(आरामकुर्सी पर बैठकर) मैं तुम्हारी बातों में आकर किसी ऐरे-ग़ैरे आदमी के घर तो नहीं चली आई? तुम्हारे मित्र का तो यहाँ एक नौकर भी नहीं देख पड़ता!

आशाराम—राम का नाम लो। मैं कभी ऐसा कर सकता हूँ कि तुम्हें किसी उचक्के के घर ले जाऊँ। मेरे परम मित्र रावबहादुर गिरधारीसिंहजी ने जब बहुत ही आग्रह किया, तब मैंने सोचा कि रास्ते में इनका घर आ गया है, तो यहीं आज दो-चार मिनिट बैठकर इनका तक़ाज़ा भी पूरा कर दें। इनकी भी बात रह जायगी। गिरधारीसिंह बड़े भले आदमी हैं। उनकी सानी का आदमी मिलना मुशकिल है। वह मित्रों का बड़ा आदर-सत्कार—

रामबाई—आज आपके साथ आने में मुझे जो संकोच हुआ, उसे मैं ही जानती हूँ। मौसी से कुछ और ही बात बतानी पड़ी। हाँ, यह तो बताइए कि आज आप इतने उदास क्यों हैं? तबीयत तो अच्छी है न?

आशाराम—कैसी उदासी ? मेरी तबीयत तो बहुत अच्छी है। आज मैं अपने चाचा साहब से मिलने गया था। वह अब-तब में हैं। फिर भी उस ज़िद्दी ने कह दिया कि मैं अब इसका (मेरा) मुँह नहीं देखना चाहता। इसी से मुझे कुछ बुरा लगा। ख़ैर, मुझे अब यह बतला देना चाहिए कि मैं यहाँ तुम्हें क्यों ले आया हूँ। प्रिये, अपने कार्य की सिद्धि में इन रावबहादुर साहब से बड़ी मदद मिल रही है। इसे अहोभाग्य समझो कि आज उनसे अनायास ही परिचय हो जायगा। गिरधारीसिंह बड़े ही सज्जन और दयालु पुरुष हैं। इधर जिस दिन से उन्हें रावबहादुरी मिली है, उसी दिन से वह कुछ-कुछ पागल हो गए हैं। उन्हें इस बात की बड़ी लालसा है कि लोग उन्हें स्त्री-शिक्षा और विधवा-विवाह का अगुआ समझें। प्राणप्रिये, मैं केवल इसीलिये इतना उत्सुक हो रहा हूँ कि ऐसे परोपकारी से तुम्हारा परिचय हो जाय। वह देखो, रावबहादुर साहब आ रहे हैं—

(फूलों की बहुत-सी मालाएँ पहने रावबहादुर प्रवेश करता है। उसके पीछे-पीछे भड़कीली पोशाक पहने कान्हसिंह और पलटू आते हैं। तीनों अदब के साथ झुककर रामबाई को पाँच-छः बार सलाम करते हैं)

रामबाई—(आशाराम से धीरे-धीरे) हैं, यह क्या !

रावबहादुर—(आदर से नीची निगाह करके) आशा है, आप लोग मुझे क्षमा करेंगे। क्या करूं, उन ढपोलानंद

आदि सज्जनों ने आज मुझे अभिनंदनपत्र दिया, सो वहीं जलसे में देर हो गई। यदि मुझे मालूम होता कि वहाँ इतनी देर लगेगी, तो मैं जाता ही नहीं—साफ़ इनकार कर देता। (स्वगत) इनको आप्यायित करने के लिये मैंने शास्त्रीजी से जो शब्द रट लिए थे, उन्हें अब इनके ऊपर तोप की तरह दाग देना चाहिए। (प्रकट, रामबाई को संबोधन कर) श्रीमतीजी, आप-जैसी शिक्षिता अरण्यपंडिता के पद-कमलों की रज से मेरा यह बँगला पुनीत हो गया। मैं स्वयं आज कृतकृत्य हो गया! आज आपने मुझे उपकार-महोदधि में निमग्न कर दिया। मैं आपका गुलाम हूँ—दासानुदास—

रामबाई—(कुछ लजाकर) मैंने किया ही क्या है। मैं स्वयं रावबहादुर साहब के निकट कृतज्ञ हूँ। आपने मेरा इतना अधिक सम्मान—

(टेबिल पर गुलदस्ते रखकर कान्हसिंह और पलटू झुककर सलाम करते हैं)

रावबहादुर—आप यह क्या कहती हैं। आप सौंदर्य की खान हैं, आपका मुख-कमल—

(रामबाई लज्जित होकर आशाराम की ओर देखती है)

आशाराम—(रावबहादुर का ध्यान हटाने के लिये बाजे की ओर इशारा करके) ओहो! रावबहादुर साहब, आप तो संगीत के भी शौक़ीन मालूम होते हैं।

रावबहादुर—(आशाराम से एक ओर) अपनी प्रिया का मनोरंजन करने के लिये आज मैंने गवैए को विशेष रूप से बुलाया था; (घड़ी की ओर देखकर) पर उस गधे का अब तक पता ही नहीं है!

रामबाई—(रावबहादुर से) आप-जैसे गुणियों को ऐसी बातों का शौक़ ज़रूर होना चाहिए। मैंने सुना है, आप बड़े विद्वान्, मार्मिक और रसिक हैं।

रावबहादुर—(आनंद से) नहीं, यह तो कुछ भी नहीं है। पर हाँ, थोड़ा-सा शौक़ ज़रूर है। इन लोगों का इससे मान बढ़ता है, केवल इसीलिये मैं उस्ताद गवैए से गाना-बजाना सीखता हूँ, सिर्फ़ इसीलिये उसे नौकर रख लिया है। अभी-अभी मैं संगीत-समाज का भी मेंबर हो गया हूँ। (रामबाई के हाथ की अँगूठी की ओर देखकर) आहाहा! श्रीमती-जी, आपके शरीर के अवयव बहुत ही उत्तम हैं। आपकी उँगलियाँ बहुत ही सुडौल हैं। उस अँगूठी से आपकी उँगली बहुत ही सुंदर देख पड़ती है। आपने उसे स्वी—

आशाराम—(स्वगत) यह गधा अब मेरी फ़ज़ीहत करने पर उतारू हो गया! (धीरे से रावबहादुर के कान में) रावबहादुर साहब, आप-जैसे उपाधिधारी पुरुष समर्पित वस्तु का अपने मुँह से नाम तक नहीं लेते। उलटे वे तो इस बात का प्रयत्न करते हैं कि कहीं लोगों को यह न मालूम हो

जाय कि यह इन्हीं की दी हुई है। अब आप उस अँगूठी की ओर देखिए भी मत।

रावबहादुर—(आशाराम के कान में) जी हाँ, आपका कहना बहुत ठीक है। मैं अब उस अँगूठी की तरफ़ देखूँगा भी नहीं। मित्र आशाराम, तुमने यह पहले ही से कह दिया होता, तो बहुत अच्छा होता। (रामबाई की उँगली की अँगूठी को एकटक देखकर) अरे, उस गधे गवैए ने ऐन वक्त पर दग़ा दी!

रामबाई—रावबहादुर साहब, आपका ध्यान इस अँगूठी पर बहुत लगा है। तो क्या यह आप—

रावबहादुर—(चौंककर आशाराम की ओर देखता है) जी—हाँ—मुझे वह बहुत अच्छी लगी, इसी से—तो—मैं—नहीं-नहीं—पर श्रीमतीजी, वह बड़ी क़ीमती—

आशाराम—(स्वगत) यह मूर्ख फिर भी वही बात कहना चाहता है। इधर-उधर से फिर वही बात! (बात टालकर) रावबहादुर साहब, अब आपको देर होगी। बस, अब रहने दीजिए, बहुत हो चुका।

रावबहादुर—परंतु उस गवैए ने बड़ा धोका दिया। (धीरे से) साले का अब तक पता नहीं। (रामबाई से) श्रीमतीजी, आपके लिये बंदा सब कुछ करने को तैयार है। आपके अलौकिक सौंदर्य ने मुझे क़रीब-क़रीब पागल कर दिया है। यदि आपने कृपा-कटाक्ष से मुझ दास को

अनुगृहीत न किया, तो मुझे फिर कहीं चैन न मिलेगी। फिर मेरे जीवन की आशा नहीं। मेरा प्रेम—

(इतने में क्रोधांध मनिकाबाई आती है। उसे देखकर सभी चौंकते हैं)

मनिकाबाई—आहा, क्या कहना है। आपका प्रेम तो बहता फिरता है। कलमुँहे आदमियों को किसी तरह की लाज-शरम नहीं। इस बुढ़ापे में ये चोचले बहुत ही अच्छे लगते हैं! (रामबाई की ओर देखकर) श्रीमतीजी, मेरे घर में घुसकर मेरे पति को मोहित करने में आप-जैसी पढ़ी-लिखी स्त्री को क्या कुछ भी संकोच नहीं होता? हाय, क्या स्त्रियाँ इसी के लिये पढ़ना-लिखना सीखती हैं!

रामबाई—(शरमाकर आशाराम से) वाह, आपने यहाँ लाकर मेरी खासी फ़ज़ीहत करवाई। इस मुँहफट औरत की जली-कटी बातें मुझे मुफ़्त ही सुननी पड़ीं। (क्रोधित होकर जाती है। उसके पीछे-पीछे आशाराम भी जाता है)

राववहादुर—(खीझकर आशाराम से हाथ जोड़कर कहता है) मित्र आशारामजी, आप कृपा कर मेरी ओर से रामबाई को समझा देना। वह मुझे अवश्य क्षमा कर देंगी। (मनिकाबाई की ओर इशारा करके) यह बिलकुल नहीं मानती, नादान है। (आशाराम के चले जाने पर मनिकाबाई से) चुड़ैल कहीं की, तू खूब मेरे पीछे पड़ी है! अपने घर आए हुए अतिथि का इस तरह निरादर करने में तुझे लाज नहीं लगी? तू तो रामबाई के तलवों की बराबरी

की भी नहीं। भूली किस मिज़ाज में है! मेरा नाम राव-बहादुर गिरधारीसिंह तभी है, जब मैं उसके पैरों पर तुझसे नाक रगड़वाऊँ!

मनिकाबाई—अरेरे, मैं बिलकुल ही डर गई! अब क्या करूँ! किस चुहिया के बिल में घुस जाऊँ! मुझे क्या ग़रज़ पड़ी है, जो उसके आगे नाक रगड़ूँगी! राँड़ भाड़ में न चली जाय—

रावबहादुर—चुप रह हरामज़ादी, ज़बान लड़ाने की तुझे बुरी लत पड़ गई है। दिन-दिन बेशरम होती जाती है।

मनिकाबाई—यह ज्ञान किसी और को देना, जो तुम्हारे गुन-औगुन न जानती हो! दाई से कहीं पेट छिप सकता है!

रावबहादुर—निकल यहाँ से चुड़ैल! बक-झक करके खोपड़ी ख़ाली किए डालती है! (धक्का देकर हटाता है) बड़ी मुशकिल से आफ़त टली। न-मालूम यह इतनी जल्दी कैसे लौट आई? राँड़ ने सब गुड़ गोबर कर दिया! मैं अपनी मनोमोहिनी को सच्चा प्रेम प्रकट कर दिखलाने ही को था कि यह चांडालिन बीच में आकर कूद पड़ी। जो हो, किसी-न-किसी तरह इसे मेरी बातों का पता ज़रूर मिल गया है। पहले इसी बात का पता लगाता हूँ।

[क्रोधित होकर भीतर जाता है

[परदा गिरता है]

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

स्थान—रावबहादुर की बैठक

[बुड्ढे सरदार की पोशाक पहने और हाथ में हुक्का लिए भगुवा अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ आता है]

भगुवा—(हँसकर) वाखव, हमार कइस नीक स्वाँगु बना है। कान्हसिंह तौ हमका देखिकै यहि तना ते घबड़ाय गा कि कुछु कहतै नहीं बनत। सार केहि तना ते भुइँ माँ झुकिकै हमका सलाम कीन्हेसि है! (मूछों पर ताव देता है) अब अपनी यहि ज्ञान-गुरिया का छाँड़िकै मालिक का कामु करै के बरे तयार होवा चाही। जो हम बिशुनलाल का कामु न करै पाउब, तौ कौनु मुँहु देखाउब। यहै एकु फिकिरि है! (कुछ सोचने लगता है) यहि तना का हमार स्वाँगु देखिकै दमड़ी हमका कबौं ना पहिचानि सकी। (पाकेट से शीशा निकालकर मुँह देखता है) वाह! वाह! स्वाँगु बना है कि जिहिका कुछ नाँव! हम आपुइ अपने का नहीं पहिचानि सकित, फिरि दमड़ी कै का बिसाति है? औ वहिका तौ यहु कर-मुँहा मालिकु बिरकुलि ना चीन्हि सकी। यह कउनि

आय, मटकति चली जाति है? (देखता है) अरे यह तौ हमारि पट्टी आय हो! दाखव, मूड़े के ऊपर मटुकी धरे कइसे मटकति चली जाति है। यहु सार कउन वहिका पछियाए जात है? अरे यहु तौ दउलतिया आय। अब तक सार कूकुर-अस पछियाए फिरत है। वहु तौ हमका चिन्हिबै नहीं कीन्हेसि, फिरि भला दमड़ी कइसे चीन्ही? जब इन पंचनु का यहु हालु है, तब वहि गिरधरिया सारे के तौ पुरिखौ ना हमका चीन्हि पइहैं! आसाराम तौ वहिते कहि ही दीन्हेनि हैं की राजा मकासिंह के देवान (हम) तुमते मिलइया हैं। फिरि यहु सार रावबहदुरा अबै लगे घर के भीतर काहे का लुका बइठ है! सार सिंगार-उँगार तौ नाहीं कइ रहा है! (कुछ आहट पाकर) हाँ, अब आवा।

(भड़कीली पोशाक पहने, कान्हसिंह और पलटू को साथ लिए, नाक पर स्प्रिंगदार चश्मा चढ़ाता हुआ रावबहादुर बाहर आता है। चश्मा गिरता है, उसे फिर से अच्छी तरह लगाकर वह पलटू को निरखता है। इसी समय भगुवा पाँच-सात बार जमीन तक झुककर दरबारी सलाम करता है। रावबहादुर भी इसी ढंग से भगुवा को आदाब करता है)

रावबहादुर—(आश्चर्य की दृष्टि से देखकर, स्वगत) भई, यह कौन होगा? उन महाराजा का दीवान तो नहीं है? पर वह तो आशाराम के साथ आनेवाला था, और यह अकेला ही

आया है। तो यह कोई और मुसाहिब होगा। सफ़ेदी ने इसके चेहरे को कितना अच्छा बना दिया है। ओहो!

भगुवा—(फिर से एक बार झुककर सलाम करता और दाढ़ी पर हाथ फेरता है) तसलीमात-अर्ज़ रावबहादुर साहब। कहिए, मिज़ाज़ मुबारक। मेरी-आपकी पुरानी जान-पहचान है? आपने मुझे पहचाना कि नहीं?

रावबहादुर—(अकचकाकर) लेकिन मुझे इस वक्त याद नहीं कि आपसे कहाँ मुलाक़ात हुई थी।

भगुवा—अजी जनाब, क्या इतने ही अरसे में भूल गए? आपको हम लड़कपन से पहचानते हैं।

रावबहादुर—(आश्चर्य से) मुझे!

भगुवा—जी हाँ सरकार, आप ही को। (ज़मीन की तरफ़ हाथ का इशारा करके) जब आप छोटे बच्चे थे, तब तमाम औरतें आपको दिल से चाहती थीं—बहुत ज्यादह प्यार करती थीं।

रावबहादुर—(आश्चर्य से) क्या फ़र्माया आपने? क्या सचमुच नौजवान औरतें मुझसे मुहब्बत करती थीं?

भगुवा—बेशक। रावबहादुर साहब, आपके वालिद साहब एक अच्छे सरदार थे; उनसे मेरी बड़ी दोस्ती थी।

रावबहादुर—तो सचमुच मेरे वालिद अमीर आदमी थे?

भगुवा—बेशक! बड़े लियाक़तदार और फ़ैयाज़-दिल।

रावबहादुर—आप जानते हैं कि मेरे वालिद बड़े रहम-

दिल थे, और इसी से लोगों पर अक्सर एहसान किया करते थे? इससे तो यह जान पड़ता है कि उनसे आपकी खासी मुहब्बत रही होगी।

भगुवा—मैं उनका जिगरी दोस्त था।

रावबहादुर—वाह-वाह! फिर तो आपका कहना बावन तोले पाव रत्ती होगा। इससे साफ़ साबित होता है कि मेरे वालिद सरदार थे।

भगुवा—बेशक सरदार थे। उनकी गिनती इज़्ज़तदार रईसों में होती थी।

रावबहादुर—ओफ़्! लोग बड़े हरामखोर हैं। कहते हैं, तुम्हारा बाप गली-गली फेरी लगाता फिरता था—ऐसा टुटपुँजिया था। इन नालायक़ों को खुद मेरे वालिद की इस तरह दिल्लगी करने में ज़रा भी शर्म नहीं आती।

भगुवा—तौबा-तौबा! बड़े अफ़सोस की बात है। कौन आपके वालिद को कूचागश्त बताकर उनकी हतक करता है? जो लोग मेरे दोस्त की बदनामी करते हैं, उनकी मैं हड्डियाँ तोड़ डालूँगा। अगर वह सौदागर बन भी गए, तो इसमें इन लोगों के बाप का क्या हर्ज है?

रावबहादुर—दीवान साहब, यह बहुत अच्छा हुआ, जो आपसे मेरी जान-पहचान हो गई। इस बात के साबित करने के लिये अब अच्छा सुबूत मिल गया कि मेरे वालिद एक सरदार-घराने के रईस और आला खानदान के थे।

भगुवा—यह बिलकुल सच है, और मैं इस बात को सारी दुनिया में मशहूर कर सकता हूँ।

रावबहादुर—अगर आप यह काम कर दें, तो मेरे ऊपर बड़ा एहसान हो। आपकी मुलाक़ात से मुझे अज़हद खुशी हुई।

भगुवा—अजी जनाब रावबहादुर साहब, आपके वालिद—मैं उनकी क्या तारीफ़ करूँ—बड़े नेक, बड़े शरीफ़ आदमी थे। मैंने बहुत मुसाफ़िरत की है, मगर उनके-जैसा कोई शख़्स मुझे नहीं मिला। अफ़सोस, उनसे आख़िरी मुलाक़ात न हो सकी!

रावबहादुर—क्या कहा, आपने सैर भी ख़ूब की है?

भगुवा—जी हाँ, बहुत सफ़र किया है। तमाम हिंदुस्तान को देखा है। (धीरे से) आपसे कुछ अर्ज़ करना है।

रावबहादुर—कहिए, आप किसी तरह का संकोच न कीजिए।

भगुवा—आपके शहर में शिवपुर-रियासत के मालिक, हमारे महाराज के बड़े कुँअर साहब ज़बरसिंहजी तशरीफ़ लाए हैं। आप जानते ही होंगे कि वह असली क्षत्रिय हैं।

रावबहादुर—जी हाँ, यह बात मुझे दोस्त आशाराम से मालूम हुई थी। कुँअर साहब के दर्शन करने को हम दोनों आनेवाले थे, लेकिन इसी बीच में आपके पधारने की ख़बर

मिली। आप तो आशारामजी के हमराह तशरीफ़ लाने-वाले थे न?

भगुवा—(बात टालकर) इस शहर के बहुतेरे बाशिंदे कुँअर साहब को जानते हैं, और उनसे मिलने भी आया करते हैं। हमारे सरकार बड़ी शान-शौक़त से सफ़र करने निकले हैं। आप जानते ही होंगे कि मैं उनका ख़ास मुलाज़िम हूँ।

रावबहादुर—आप-जैसे आला अफ़सर को यहाँ आने की तकलीफ़ उठानी पड़ी, इसका मुझे रंज है। माफ़ कीजिएगा। आप—

भगुवा—(हँसकर) नहीं जनाब, मैं और ही मतलब से आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ हूँ। सुना है, आपकी लड़की बहुत ही ख़ूबसूरत है।

रावबहादुर—(आश्चर्य से) इसमें शक नहीं। मेरी लड़की बड़ी सुंदरी है; परंतु आपके—

भगुवा—(आँख मींचता हुआ कुछ हँसकर) यही तो बात है। आपकी लड़की पर कुँअर साहब फ़रेफ़्तः हो रहे हैं। और, ख़ुदा का शुक्र है कि वह आपके दामाद बनकर आपको अपना रिश्तेदार बनाना चाहते हैं।

रावबहादुर—क्या आप यह सच कह रहे हैं? शिवपुर के बड़े कुँअर साहब मेरे दामाद होना चाहते हैं?

भगुवा—सुन लीजिए जनाब, आज सुबह के वक़्त हम

लोग घोड़ों पर सवार होकर शिकार खेलने गए थे। वहाँ से लौटते वक्त बड़े कुँअर साहब ने मुझसे फ़ारसी में कहा—"आँ दुख़्तर बिसयार हसीन अस्त।" हमारे साथ एक और शख़्स थे, उनसे कुँअर साहब ने फ़र्माया कि राव-बहादुर गिरधारीसिंह की लड़की परी की मिसाल है—"हूरे बिहिश्त अस्त।" यानी स्वर्ग की देवांगना, रंभा!

रावबहादुर—ओहो, कुँअर साहब ने मेरी लड़की को रंभा कहा?

भगुवा—बेशक, मैंने उसी वक्त कुँअरजी से अर्ज़ की कि रावबहादुर मेरे दोस्त हैं। तब उन्होंने फ़र्माया—"मन ऊरा अज़ दिल अज़ीज़ मी दानम्।"

रावबहादुर—वाह, फ़ारसी-ज़बान तो बहुत ही मज़े-दार है।

भगुवा—अजी उर्दू से भी बढ़कर। जनाब रावबहादुर साहब, सनसुकरत और तमाम दूसरी ज़बानें फ़ारसी ही से तो निकली हैं। "अज़ दिल अज़ीज़" का मतलब यह है कि हम दिल से प्यार करते हैं।

रावबहादुर—तब तो इसका मतलब है प्राणप्रिय।

भगुवा—जी हाँ। अब हमारे कुँअर साहब सगाई से पेश्तर आपको सरदारी की ख़िलअत दिया चाहते हैं। जब आप यह "राजा फ़तेहधूमसिंह बहादुर शाहमल हिंद"

का ख़िताब हासिल कर लेंगे, तब कुँअर साहब से दरजे में आपकी हमसरी हो सकेगी। और, उन्हें भी आपके दामाद बनने में कुछ शर्म दामनगीर न होगी।

रावबहादुर—(आनंद से, स्वगत) अभी तक मैं अपनी रावबहादुरी के ही नशे में चूर था, और इस रावबहादुरी के प्राप्त करने में मुझे कितना प्रपंच रचना पड़ा था, कितनी खुशामद करनी पड़ी थी ; पर अब देखो, मेरे ऊपर ईश्वर की कृपादृष्टि हुई है, जो इतनी बड़ी सरदारी, विना माँगे, अपने-आप मिल रही है।

भगुवा—"राजा फ़तेहधूमसिंह बहादुर शाहमल-हिंद" का ख़िताब इतना बड़ा है कि उसके आगे आपके रावसाहब और रायबहादुर साहब वग़ैरह के ख़िताब नाचीज़ हैं। यह आला दरजे का ख़िताब है। हमारी इतनी बड़ी रियासत में सिर्फ़ दो ही तीन अमीरों को यह ख़िताब हासिल हो सका है।

रावबहादुर—तब आपसे मुझे एक प्रार्थना करनी है। वह यह कि आप कृपा कर मुझे कुँअर साहब के दर्शन करा दीजिएगा। जब वह इतनी बड़ी उपाधि देने के लिये तैयार हैं, तब क्या मुझे उनका एहसान न मानना चाहिए? (इतने में आशाराम प्रवेश कर दीवान साहब को झुककर अदब से मुजरा करता है। उसे देखकर) वाह-वाह, आशारामजी, आप इतनी जल्दी आ गए। मगर दीवान साहब से तो ऐसी

पुरानी जान-पहचान निकली ! (हँसकर) आपकी ज़रूरत ही नहीं पड़ी।

आशाराम—(स्वगत) बचा, है तो यह मेरी ही करामात ! तू इसी तरह अकड़ता रह। (प्रकट) रावबहादुर साहब, आप यह तो जानते ही हैं कि मेरे चाचा साहब आब-हवा बदलने के लिये नैनीताल की तरफ़ गए हैं। उनकी तबीयत बहुत बिगड़ने की ख़बर पाकर मैं तार देने के लिये डाक-घर तक चला गया था। इसी से ज़रा देर हो गई। हाँ, आप बँगले पर चलकर कुँअर साहब के दर्शन करें—यही अच्छा होगा, और इसी में आपकी इज़्ज़त है।

(भगुवा की ओर देखकर हँसता और झुककर सलाम करता है)

भगुवा—आपकी मुलाक़ात का कुँअर साहब को कमाल इश्तियाक़ है। अगर आप अपनी ख़्वाहिश ज़ाहिर करेंगे, तो वह फ़ौरन् आपको "राजा फ़तेहधूमसिंह बहादुर शाहमल हिंद" के ख़िताब से सरफ़राज़ कर देंगे।

आशाराम—कुँअर साहब की उदारता और गुणग्राहकता की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। पर इतनी जल्दी की ऐसी क्या ज़रूरत है ?

भगुवा—(कुछ नाराज़ी-सी दिखलाकर) अजी दोस्तमन आशाराम, ऐसा न कीजिए। कुँअर साहब तो रावबहादुर की लड़की पर आशिक़ हो गए हैं, और उसके साथ शादी भी करना चाहते हैं। इसी से तो रावबहादुर साहब को

"राजा फ़तेहधूमसिंह बहादुर शाहमल हिंद" का ख़िताब देने की ज़रूरत है। दुनिया में ऐसा आला दरजे का ख़िताब मिलना कुछ आसान बात नहीं है।

आशाराम—दीवान साहब, आपका कहना बजा है; पर इतनी जल्दी न कीजिए। जो काम धीरे-धीरे होता है, वह अच्छा समझा जाता है।

रावबहादुर—(स्वगत) आशाराम, मैं समझ गया कि तुम्हें जल्दी क्यों नापसंद है। तुम अभी मनमोदक उड़ा रहे होगे कि मालती प्राप्त हो जायगी; किंतु जब मुझे कुँअर साहब-जैसा राजघराने का दामाद मिल रहा है, तब मैं अब तुम्हारी दाल न गलने दूँगा। (प्रकट) अभी एक दिक़्क़त से और सामना करना है। मालती न-जाने कुँअर साहब को पसंद करेगी या नहीं। उसके मन को तो भिखारी विष्णुलाल ने चुरा लिया है।

भगुवा—लाहौल-वला-क़ूवत! आप कहते क्या हैं? हमारे कुँअर साहब बहुत ही ख़ूबसूरत जवान हैं। आपकी लड़की उनको देखते ही ख़ुश हो जायगी। यह कौन बड़ी बात है। (परदे की ओर देखकर) यह देखिए, अहले-दरबार अमीर व कबीर यहीं आ रहे हैं। मालूम होता है, कुँअर साहब रावबहादुर को नज़र और ख़िलअत पेश कर चुके हैं। चलिए, सब लोग मिलकर उनका इस्तक़बाल करें

[सब लोग जाते हैं

दूसरा दृश्य

स्थान—रावबहादुर के घर का भीतरी दालान

[मनिकाबाई पोथी पढ़ रही है]

दमड़ी—(हँसती हुई दौड़ती आती है) मलकिन, धाखव तौ, आजु मालिक बहुरुपिया का स्वाँगु बनायकै आए हैं ! आसाराम अउर वहि मरगइले सरदार के साथ कउन्यवँ राजा के बँगले पर गे रहैं । चलौ, धाखव तौ चलै, क्यहि तना क्यार स्वाँगु बनायनि है !

मनिकाबाई—(कुछ रुष्ट होकर) देखो इसने क्या बक-झक लगाई है । चल यहाँ से नक़लखोर कहीं की ।

दमड़ी—राम-दे, मलकिन हम झूठ नाहीं कहित । धाखव ना, करिहाँए माँ तरवारि बाँधे यही कइती का चले आवति हैं ।

(कश्मीरी अँगरखा पहने, काठियावाड़ी साफ़ा बाँधे और कमर में तलवार लटकाए रावबहादुर आता है)

मनिकाबाई—(अकचकाकर) आपने अच्छा तमाशा कर रक्खा है । आप तो आज नए बहुरुपिए बन आए हैं ।

रावबहादुर—देख, सँभलकर बातचीत कर । तू बड़ी मुँहफट हो गई है । अगर कोई और होती, तो इतने बड़े अमीर की बेअदबी करने का मज़ा बहुत जल्द चखती । लेकिन तू मेरी—रावबहादुर की—स्त्री है, इसलिये माफ़

करता हूँ। (तलवार को म्यान से निकालकर उसकी धार देखता है)

मनिकाबाई—वाह! क्या कहना है।

रावबहादुर—(मूछों पर ताव देकर) अब मैं सिर्फ़ रावबहादुर नहीं, बल्कि राजा फ़तेहधूमसिंह बहादुर शाहमल हिंद हो गया हूँ। शायद तू यह लंबा-चौड़ा ख़िताब सुनकर घबरा गई है। कुँअर साहब से मिलने के लिये मैं उनके बँगले पर गया था। वहीं पर उन्होंने यह उपाधि मुझे कृपापूर्वक दी है। अब तू समझ गई न?

मनिकाबाई—भला ऐसी बातें भी मैं समझ सकती हूँ।

रावबहादुर—(चिल्लाकर) अरी, आज से उन्होंने मुझे राजा फ़तेहधूमसिंह बहादुर शाहमल हिंद बना दिया है। (नाचता है)

मनिकाबाई—क्या कहा, आपको उन्होंने बना लिया है? अच्छा किया। इसमें उनका क्या दोष है। आजकल आपका बर्ताव ही ऐसा है। जैसी करनी, वैसी भरनी।

रावबहादुर—गँवार कहीं की देहातिन! उन कुँअर साहब ने मुझे अपने बँगले पर बड़े आदर के साथ राजघराने से बराबरी करनेवाली उपाधि दी है। परंतु तू कहती है कि उन्होंने खूब बनाया!

मनिकाबाई—मैं कहती हूँ? अजी आप ही तो कहते हैं कि उन्होंने बनाया।

रावबहादुर—(स्वगत) क्या करूँ, इस दुष्टा को कैसे समझाऊँ ? (प्रकट) राजा फ़तेहधूमसिंह बहादुर शाह-मल हिंद बनाया, अर्थात् मुझे बड़ा भारी सरदार बनाया। अब समझी ! कुँअर साहब इतना ही करके खुश नहीं हुए, बल्कि आज रात को वह अपने दल-बल-समेत यहाँ अपने घर आनेवाले हैं। अब तू समझ गई होगी कि मैं राजा फ़तेहधूमसिंह बहादुर शाहमल हिंद हो गया हूँ।

[नाचता हुआ जाता है

मनिकाबाई—(माथा पीटकर) विधाता ने इन्हें पागल कर दिया है। अब इन्हें घर में बंद करके रखना चाहिए, नहीं तो रास्ते में जाकर यह न-जाने क्या कर बैठेंगे ।

[दौड़ती हुई जाती है

तीसरा दृश्य

स्थान—रावबहादुर की सजी हुई बैठक

[एक ओर ऊँची मसनद पर कामदार कपड़ा बिछा हुआ है, और उसी के आगे टेबिल पर गजरे और गुलदस्ते रक्खे हैं। तश्तरी में गुलाबपाश, इत्रदान वग़ैरह रक्खे हैं। बढ़िया पोशाक पहने एक ओर पलटू और दूसरी ओर कान्हसिंह अदब के साथ खड़ा है। इसी समय रामबाई और आशाराम बातचीत करते हुए आते हैं]

आशाराम—वाह-वाह, रावबहादुर साहब, आपने खूब तैयारी की है। (रामबाई से) प्रिये, मैं अपने परम मित्र

विष्णुलाल को वचन दे चुका हूँ। इसी से, उनकी सहायता करने के लिये, आज मुझको यहाँ आना पड़ा। उस दिन मेरे और मेरे मित्र के लिये तुम्हें जो अपमान सहना पड़ा, उसके लिये मैं और मेरा मित्र दोनों ही तुम्हारे निकट ऋणी हैं। भगवान् करें, इस प्रयत्न का परिणाम अच्छा हो, और इस स्वाँग के पुरस्कार में मालती और विष्णुलाल का शुभ परिणय हो जाय। ज्यों ही निर्विघ्न शास्त्रोच्चार होकर भाँवरें पड़ीं, त्यों ही हमारे अभिनय का दृश्य समाप्त हुआ। हः-हः-हः! कल की याद आते ही मैं हँसी रोकने में असमर्थ हो जाता हूँ। विष्णुलाल ने कल तो ग़ज़ब की करामात दिखाई, और उनके नौकर भगुवा ने तो कमाल ही कर दिया! उसने दीवान का रूप रखकर जो काम किया, उसकी तारीफ़ करते नहीं बनती। विष्णुलाल फ़ारसी बोलते थे, और भगुवा उसका मतलब बड़ी खूबी के साथ रावबहादुर को समझाता था। परंतु जब रावबहादुर को राजा फ़तेहधूमसिंह बहादुर शाहमल हिंद का ख़िताब दिया गया, तब पिछले सभी काम फीके पड़ गए; क्योंकि ख़िताब देने का काम ऐसी सफ़ाई से किया गया कि पिछला कोई भी काम ऐसा अच्छा न हो सका था, और न आगे होने की आशा है। लंबी दाढ़ी लगाकर भगुवा दीवानजी बना था। गिरधारीसिंह के आगे उसने ऐसी अद्भुत बातचीत

की और कुछ ऐसे गड़बड़ शब्द कहे कि देखते ही बन पड़ा। अंत को विष्णुलाल ने अपनी तलवार गिरधारीसिंह के पाँच बार छुआई, और सिर पर साफ़ा बँधवा दिया। इस नक़ल को देखकर मैं बड़ी मुशकिल से हँसी रोक सका। विष्णुलाल ने फ़ारसी में बातचीत करने का ऐसा ढंग निकाला, जिससे सारा काम छिपा रहा। (आगे देखकर) अरे रावबहादुर तो आ गए। प्रिये, अब बड़ी सावधानी से काम करना है। ज़रा-सी गड़बड़ होते ही सारी इमारत भर-भराकर गिर पड़ेगी, और न-मालूम क्या परिणाम होगा।

रामबाई—आप इसकी कुछ भी फ़िक्र न करें। इस काम में आपकी मदद करने का मैंने निश्चय कर लिया है।

(राजा फ़तेहधूमसिंह बहादुर शाहमत़ हिंद की जर्क़-बर्क़ पोशाक पहने रावबहादुर आता है)

रावबहादुर—(स्वगत) अब जब कि मुझे इतनी बड़ी उपाधि मिल गई है, तब इसकी योग्यता का विचार करके ही मुझे औरों के साथ व्यवहार करना चाहिए; नहीं तो इस उपाधि का कुछ भी उपयोग न होगा। अब तक की बात और थी। पर अब मुझे आशाराम-जैसे आदमियों से दोस्ती का नाता न रखना चाहिए; नहीं तो मेरी इज़्ज़त में बट्टा लगेगा। (आशाराम और रामबाई को देखकर चौंकता और अदब से राम-राम करता है। आशाराम झुककर उसे आठ-दस बार राम-राम करता है)

आशाराम—रावबहादुर साहब, आपको राजा फ़तेह-धूमसिंह बहादुर शाहमल हिंद की बड़ी उपाधि मिली और आपकी बेटी मालती का विवाह हिज़ हाइनेस महाराज ज़बरसिंह के साथ होनेवाला है। इन दोनों कामों की खुशी में आपका अभिनंदन करने के लिये श्रीमती रामबाई और हम आए हैं।

रावबहादुर—(दोनों हाथ उठाकर) तुम दोनों को मेरा आशीर्वाद है । (रामबाई से) श्रीमतीजी, मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। मेरी अशिक्षिता स्त्री ने उस दिन आपका जो अपमान किया है उसके लिये मैं क्षमा-प्रार्थना करता हूँ। मुझे बड़ा दुःख हुआ; परंतु करता क्या—"दुष्ट संग जनि देय विधाता।" मेरा भेजा हुआ प्रेम-पत्र—

आशाराम—(बीच ही में बात काटकर) हाँ रावबहादुर साहब, यह तो बतलाइए कि आपके भावी दामाद कुँअर साहब के आने में कितनी देर है?

रावबहादुर—(सामने देखकर) आहा! कुँअर साहब की सौ वर्ष की उम्र हो। वह देखो, उनका नाम लिया और वह आ गए। (कुँअर जबरसिंह के वेष में राजपूती ढंग की पोशाक पहने विष्णु-लाल आते हैं। उनकी ओर उँगली से दिखाकर) श्रीमतीजी, इन्हीं नरपुंगव को मैं अपनी मालती समर्पण कर कन्या-दान का पुण्य संचित करूँगा । यह समारंभ आज अभी होगा।

(रावबहादुर, आशाराम, पलटू और कान्हसिंह सभी लोग विष्णुलाल को अदब के साथ राम-राम करते हैं)

आशाराम—महाराज ज़बरसिंहजी की जय हो। हम सब लोग सरकार के सेवक हैं। (मुँह छिपाकर हँसता है)

रावबहादुर—(बड़ी घबराहट से) अरे आज वह बूढ़े दीवानजी नहीं देख पड़ते। अब महाराजकुमार को कौन हमारी बातें समझावेगा ; क्योंकि सरकार फ़ारसी के आलिम हैं, और मैं अलिफ़-बे भी नहीं जानता। अब क्या करूँ ! (आशाराम और रामबाई की ओर उँगली दिखलाकर) कुँअर साहब, यह सज्जन बड़े धुरंधर विद्वान् हैं, और इसी प्रकार यह परमा सुंदरी तथा विदुषी हैं। (विष्णुलाल रावबहादुर की ओर इस तरह देखता है, जैसे उसकी एक भी बात न समझता हो) ओफ़, बड़ी मुशकिल हुई, और कोई दूसरा दुभाषिया भी नहीं है। सरकार, आपके दीवान साहब कहाँ हैं ? (इसी समय लंबी सफ़ेद दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ भगुवा आता है। उसे देखकर) अजी दीवान साहब, आप अब तक कहाँ थे ? आपके न रहने से परस्पर बातचीत करने में मुझे बड़ी दिक़्क़त हुई। (आशाराम और रामबाई को दिखलाकर) कुँअर साहब से कहिए कि हमारे शहर के ये मशहूर रईस आपसे मुलाक़ात करने आए हैं। (भगुवा उनकी ओर देखकर ज़रा-सा मुसकिराता है) दीवानजी, आप कृपाकर कुँअर साहब को मेरा मतलब समझा दीजिए।

भगुवा—(विष्णुलाल से अदब के साथ) इन कुफ़नम शख़्श व गुफ़्तं बेग़म खुश शेहर-ए-उमराव अस्ता गरशम् बेद-शम् खुश अदम् बदनम् !

विष्णुलाल—मन बिसयार खुश शुदाह अम् ।

रावबहादुर—(आशाराम से) सुना, फ़ारसी भाषा कैसी मधुर है ।

भगुवा—कुँअर साहब की दिली तमन्ना है कि आप और कुँअर साहब के ख़ानदान से रिश्ते करावतदारी पैदा हो ।

रावबहादुर—अहा, इस भाषा में कितनी मनोहरता है । मुझमें भला है ही कौन-सी करामात ! यह तो सब इन्हीं के उपकार का फल है ।

आशाराम—बिलकुल सच है ।

भगुवा—करामात नहीं साहब, करावतगारी यानी सगाई—

(इसी समय कामदार साड़ी पहने मालती कुछ लजाती हुई आती और नीची नजर किए खड़ी होती है)

रावबहादुर—बेटी, यहाँ आओ । ऐसी क्यों लजाती हो ? आओ, कुँअर साहब के पास खड़ी हो जाओ । मुझे देखने दो कि विधाता ने कैसी जुगल जोड़ी मिलाई है । यह कुँअर साहब राजपूत-ख़ानदान के असल क्षत्रिय हैं । इन्होंने तुम्हारे साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की है । इनसे रिश्तेदारी हो जाने पर अपना वंश भी ख़ानदानी समझा

जाने लगेगा। बेटी, आज तक जो मैंने तुम्हारा विवाह नहीं किया, उसका फल आज मिल गया। तेरे योग्य पति ने तुझे आप ही ढूँढ़ लिया।

विष्णुलाल—(मालती से) चे रूये ज़ेबास्त ! के माहे कमाल अज़ चेहरे मुनव्वरश ब सबब खिजालत हिलाल गर दिदाह !!

रावबहादुर—(पागल की तरह हक्का-बक्का होकर देखता है) क्या हिलाल मँगाऊँ ? मैं बैंड वग़ैरह मँगाने के झंझट में नहीं पड़ा; क्योंकि मेरा सुधारकों से हेल-मेल है। इससे डरता हूँ कि कहीं वे बदनाम न करने लग जायँ। परंतु यदि कुँअर साहब की यही इच्छा हो, तो मैं अभी हिलाल मँगवाता हूँ !

भगुवा—(ठठाकर हँसता है) राजा फ़तेहधूनसिंह बहादुर शाहमल हिंद राव गिरधारीसिंहजी बहादुर, आप समझे नहीं। कुँअर साहब फ़रमाते हैं कि यह ऐसी अच्छी सूरत है कि चौदहवीं रात का चाँद भी इस चेहरे के हुस्न को देखकर, शर्म से घटकर, हिलाल हो गया।

रावबहादुर—(लजाकर, स्वगत) मेरी खूब फ़ज़ीहत हुई। अच्छा होता, अगर मैं कुछ भी उत्तर न देता। (प्रकट) अच्छा, अब मुझे फ़ारसी पढ़ाने के लिये एक मौलवी कल से ज़रूर रख लेना चाहिए।

भगुवा—रख लीजिए। इसकी कुछ फ़िक्र नहीं। हमारे

मुंशी मिरज़ा कुफ़्तक अब्दुल गुफ़्तम् नव्वाब बहादुर आपको अच्छी तालीम देंगे।

रावबहादुर—बहुत अच्छी बात है। मैं ऐसा ही करूँगा। (हाथ जोड़ता है)

भगुवा—(कुँअर से) रावबहादुर अर्ज़ कुनश को तशरीफ़ गुरनवश मन विसयार खुश आवरश मरा हक़्के गरश्त !

रावबहादुर—अहाहा ! कैसी अच्छी भाषा है। यह हमारी हिंदी चिंदी-चिंदी उड़ा देने के लायक़ है। अजी किसी भी काम की नहीं।

विष्णुलाल—(रावबहादुर से) रावबहादुर राजा फ़तेह-धूमसिंह बहादुर शाहमल हिंद बिसयार आक़िल अस्त। (मालती की ओर इशारा करके) ईं दुख़्तर बिसयार अक़्लमंद अस्त।

भगुवा—कुँअर साहब फ़रमाते हैं कि आपकी लड़की बड़ी अक़्लमंद है, और आप भी बड़े लायक़ हैं (मालती लजा-कर कनखियों से विष्णुलाल को देखती है)

रावबहादुर—(हाथ जोड़कर) यह तो आपकी मेहरबानी है। (मालती की ओर देखकर) बेटी, ले अब कुँअर साहब के गले में जयमाल डालने के लिये तैयार—

मालती—(मुँह फेरकर हँसती है) बप्पा, मुझे क्षमा करो। मैंने अज्ञान से आपकी आज्ञा की अब तक अवहेला की है, अब तक मैंने आपकी आज्ञा के विरुद्ध आचरण करके

आपके हृदय को मर्माहत किया है, इसका मुझे पश्चात्ताप है। आप मेरे जन्मदाता हैं, आप जो कुछ करेंगे, मेरी भलाई ही के लिये करेंगे। अब मैं सदा आपकी आज्ञा का पालन किया करूँगी।

रामबाई—शाबाश, मालती शाबाश! ऐसी आज्ञावाहक लड़कियाँ समाज में बहुत ही थोड़ी हैं।

रावबहादुर—(आनंद से मालती की पीठ पर हाथ फेरकर) बेटी, तेरा आज का बर्ताव देखकर मुझे परम आनंद हुआ। ईश्वर ने मुझे ऐसी अच्छी आज्ञावाहक लड़की का पिता बनाया है, इसलिये मैं अपने को धन्य-धन्य समझता हूँ। बेटी, आओ, अब विलंब करने में कुछ लाभ नहीं। आ, अब मैं तुझे कुँअर साहब को सौंप दूँ। (मालती का हाथ पकड़कर उसे विष्णुलाल के पास ले जाता है। इसी समय मनिकाबाई बावली-सी बनी आती और मालती का हाथ झटकती है)

मनिकाबाई—(क्रोध से) आपने यह कर क्या रक्खा है! इस भिखारी मारवाड़ी को क्या आप मेरी प्राणप्यारी गुड़िया-सी बेटी देने चले हैं?

रावबहादुर—(स्वगत) यह आफ़त यहाँ किस तरह आ गई! अब कुशल नहीं। सारा मामला चौपट हुआ चाहता है। (प्रकट) अरी चांडालिन, तू अपना मुँह बंद कर, और ज़बान में लगाम लगा। तू नहीं जानती कि किनके आगे बक-झक कर रही है! क्या तुझे यह भी नहीं मालूम कि

राजा-रईसों के सामने कैसा व्यवहार करना चाहिए! आज तक तू हमेशा मुझे छेड़ती रहती थी कि मालती का विवाह कर दो—लड़की सयानी हो गई है। अब आँख खोलकर क्यों नहीं देखती कि मैं उसके लिये कैसा अच्छा राजघराने का रूपवान् सुंदर वर ढूँढ़ लाया हूँ। इस रिश्तेदारी के योग्य बनाने के लिये ही तो महाराजबहादुर ने मुझे राजा फ़तेहधूमसिंह बहादुर शाहमल हिंद का खिताब दिया है। अब मैं इनका श्वशुर होने योग्य हो गया। (मगुवा की ओर दिखलाकर) यह बुढ़ऊ महाराज साहब के दीवान हैं। इनसे मेरी पुरानी जान-पहचान निकल आई। इनके पास ऐसे अनेक प्रमाण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि मेरे बाप-दादे खासे सरदार थे। हमारे पिता के ये बड़े मित्र—

भगुवा—(अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरकर) इन्शाल्लाह ! बड़े दोस्त। बेशक, हम जानते हैं कि आप सरदारज़ादे हैं।

रावबहादुर—इन दीवान साहब ने दुभाषिए का खासा काम किया। इन्हीं की कृपा से कुँअर साहब मेरी बातें समझ सकते थे, और मैं उनका मतलब जान सकता था। दीवान साहब न होते, तो बड़ी दिक़्क़त होती। ख़ैर, जो हुआ, सो हुआ। अब इन्हीं के द्वारा जमाई का कुशल-समाचार तो पूछ ले। अब तो तुझे इनका आदर-सत्कार करना ही चाहिए।

मनिकाबाई—हाँ, करूँगी क्यों नहीं। ऐ दाढ़ीवाले

मदारी, मैं साफ़ कहती हूँ कि मेरे प्राण भले ही चले जायँ, पर मैं अपनी लड़की तुम्हारे इन राजा को कभी न दूँगी। यह तो बावले हो रहे हैं, तुम क्यों इनकी बातों में फँसते हो? अब अपने राजा साहब के साथ यहाँ से चटपट रफूचक्कर हो जाओ। इसी में तुम्हारी भलाई है। (रावबहादुर की ओर पलटकर) क्या तुम्हारा दिमाग़ ठिकाने नहीं है? कभी सुना भी है कि अपनी जाति की लड़की मारवाड़ी के यहाँ ब्याही गई है!

रावबहादुर—कहाँ की जाति और कहाँ का क्या? मैं तो सुधारक हूँ। मैं ऐसी मूर्खता की बातें नहीं मानता। मैं इतना मूर्ख नहीं कि असल क्षत्रिय राजपूत के साथ अनायास हो रहे इस संबंध को छोड़कर पीछे से पैर पटकता फिरूँ! तुम अपने दुराग्रह को छोड़ो।

रामबाई—जब तुम्हारी बेटी ने भी कुँअर साहब को पसंद कर लिया है, तब तुम्हीं क्यों विघ्न करने आ गई हो! ऐसा सुंदर कुँअर भला किसे बुरा लगेगा? और, आजकल की लड़कियों को तो यह बात सिखानी ही नहीं पड़ती।

मानिकाबाई—(क्रोध से मालती की ओर देखकर) क्या कहा, मेरी मालती इस मारवाड़ी के साथ जाने को तैयार है? इसके साथ विवाह कराने को यह राज़ी हो गई है? मैं समझती हूँ कि आपकी बात मैंने ठीक-ठीक नहीं सुनी। मेरे कान तो नहीं धोखा देने लग गए!

आशाराम—मनिकाबाई, इस प्रकार वृथा क्रोध मत करो। जब गिरधारीसिंहजी ने बहुत आग्रह किया, और मालती ने कुँअर ज़बरसिंह साहब को प्रत्यक्ष देख लिया, तब वह अपने पिता की बात पर राज़ी हो गई—इसमें अचरज ही क्या है।

रामबाई—(मुसकिराकर) और मनिकाबाई, एक बात तो सुनो। माता-पिता की आज्ञा मानना संतान का परम धर्म है। फिर वह तो पढ़ी-लिखी होशियार है, भला-बुरा सब समझ सकती है।

मनिकाबाई—(क्रोधित होकर मालती पर झपटती है) क्यों री बेशरम! तू भी इन्हीं के रास्ते पर गई ? विष्णुलाल पर जो तेरा इतना अटल प्रेम था, वह क्या हुआ। आज-कल के स्कूलों में पढ़नेवाली लड़कियों ने तो पुरानी रीति पर बिलकुल मिट्टी डाल दी है! हाय रे विधाता, यह क्या हुआ ?

आशाराम—इन कुँअर साहब की सुंदर मूर्ति के आगे उस भिखमंगे विष्णुलाल का प्रेम है ही किस पसंगे में। कहाँ इतना बड़ा राज-पाट और ऐश्वर्य, और कहाँ वह भिखारी विष्णुलाल! कुछ सोचो तो—

मनिकाबाई—(क्रोध से) अब सोचने-समझने के लिये मेरे पास समय नहीं है—बातचीत पक्की होकर सगाई हो चुकी है। मैं बेचारे विष्णुलाल के साथ विश्वासघात नहीं कर सकती।

रावबहादुर—चुड़ैल, बड़-बड़ क्या कर रही है। (ज़ोर से) अच्छा, अब तू अपनी जीभ-रूपी धकधकाती हुई रेलगाड़ी को यहीं रोक दे। अब स्वयं विधाता आकर इस विवाह को रोकना चाहें, तो भी यह रुक नहीं सकता ; फिर तू है ही किस लेखे में ! क्यों वृथा बक-बक करके समय नष्ट कर रही है।

मनिकाबाई—(ज़ोर से) अच्छा तो मैं भी कहती हूँ कि ब्रह्मा ही क्यों न आ जायँ, मैं यह विवाह हर्गिज़ न होने दूँगी। अरी मालती, क्या तू सीधी बातों से न मानेगी ? चल भीतर।

मालती—(डरकर) किंतु अम्मा—

मनिकाबाई—किंतु-परंतु मैं नहीं सुनना चाहती। तू यहाँ से चुपचाप चली चल। अब तू अपना मुँह न दिखला। निर्लज्ज, कुलक्षण कहीं की !

रावबहादुर—तू डाँट-डपट करनेवाली कौन होती है ? हाँ, तू यहाँ से खुशी से टल सकती है। कोई तुझे रोकता नहीं है।

मनिकाबाई—(क्रोध से) तो क्या आप ही उसके बाप हैं, मैं उसकी माँ नहीं हूँ ?

भगुवा—(आगे आकर अदब के साथ) श्रीमतीजी, नहीं-नहीं, रानी साहबा, आप—

मनिकाबाई—अरे दईमारे दाढ़ीवाले बुड्ढे, तू क्यों बीच में कूदता है ?

भगुवा—राजा फ़तेहधूमसिंह बहादुर शाहमल हिंद: रावबहादुर की रानी साहबा, मुझे आपसे तनहाई में कुछ राज़ ज़ाहिर करना है।

मनिकाबाई—मैं ऐसे मुए की एक भी बात नहीं सुनना चाहती। इन्होंने सुना, सो तो यह हाल है, मैं सुनूँगी तो न-जाने क्या होगा। तुम्हीं लोगों की दया से इस घर का सत्यानाश हो रहा है। चूल्हे में जायँ तेरी बातें, चल यहाँ से।

भगुवा—(रावबहादुर से) अगर रानी साहबा मेरी एक बात सुनना क़बूल करें, तो सारे मरहले तय हो जायँ।

मनिकाबाई—जिसे तय करना हो, सो तेरी बातें सुने

भगुवा—(ज़रा पास जाकर) अजी सरकार, ज़रा बंदे की अर्ज़ तो सुन लीजिए।

रावबहादुर—(पैर पटककर) अरी चुड़ैल, यह बूढ़े दीवान साहब क्या कहते हैं, सुन क्यों नहीं लेती? क्या तेरे कानों के परदे फटे जाते हैं? तू तो आज साक्षात् ताड़का हो रही है।

भगुवा—(मनिकाबाई के बिलकुल समीप जाकर) ज़रा तख़लिए में तशरीफ़ लाइए, और इसका राज़ सुन लीजिए।

मनिकाबाई—(खीझकर) इन मुओं ने खूब सिर उठाया है। कह, क्या कहता है, किसी तरह पिंड भी छूटे!

भगुवा—(दबी आवाज़ से) ए मनिकाबाई, ई का तुम

बहलानेन की अइसी बातैं कइ रही हौ ! हम तुमका इतनी द्यार ते इसारा करित आय, मुदा तुम तनकौ ना समुझेव। राजा औ देवान हियाँ कोऊ नहिन। मालिक का कामु करै के बरे हम ही यह सब रचना रचि दीन हवै । ज़वरसिंह कहती तिनुकु निहारौ तौ।

मनिकाबाई—(कुँअर की ओर देखकर हँसती है) ओहो, इस माया के जंजाल को मैं कैसे समझ सकती ! अब सारी बातें मेरी समझ में आ गईं।

भगुवा—काहे, अब बिसुनलाल का चीन्हेव ? मुदा अब रावबहादुर ना जानै पावैं। नाहीं तौ सब खेलु बिगरि जाई अब मालती की भँउरी होय देव।

मनिकाबाई—(आशाराम के पास जाकर, जोर से) आशाराम, तुम्हीं बतलाओ, जब मैं विष्णुलाल को वचन दे चुकी हूँ, तब इस काम के लिये कैसे राज़ी हो जाऊँ ! लोग कैसी-कैसी बातें कहेंगे ! नहीं, यह मैं कभी न होने दूँगी—

रावबहादुर—(आतुरतापूर्वक धीमी आवाज़ से विनय के साथ) यह लो, कहो तो मैं तुम्हारे पैरों पड़ूँ, किंतु ऐसे ऐन मौक़े पर मेरी फ़ज़ीहत न करो।

मनिकाबाई—लेकिन विष्णुलाल को किस मुँह से उत्तर दिया जा सकेगा ! हाँ, यदि तुम्हारे मित्र आशाराम उन्हें राज़ी कर लें, तो मैं लाचारी से मंजूरी दे सकती हूँ। क्या करूँ, तुम्हारे आगे मेरी एक भी नहीं चलती।

आशाराम—मैं इसका ज़िम्मा लेता हूँ। मैं विष्णुलाल को समझा दूँगा। तुम उसकी कुछ भी चिंता न करो।

मनिकाबाई—तो मैं भी अब कुछ नहीं कहती।

रावबहादुर—(आनंद से) शाबाश, आज तूने मेरी बात रख ली। (मगुवा की ओर इशारा करके) मुझे विश्वास था कि बूढ़े दीवानजी तेरी दिलजमई कर ही देंगे। (व्यग्रता से) हाँ, आशाराम, तो अब क्यों देर करते हो? पंडितजी को बुलवा लो। आज के ही मुहूर्त में भाँवरें पड़ जानी चाहिए। अपनी योग्यता के अनुसार जमाई-ठाकुर को फूल नहीं तो फूल की पँखुड़ी अवश्य देनी चाहिए। किंतु आशाराम, अगर ये नेग-दस्तूर पीछे से होते रहें, तो हर्ज ही क्या है?

आशाराम—हाँ, हाँ, ठीक तो है। पहले असल काम हो जाना चाहिए। (मनिकाबाई से) ऐसे राज-वंश के जमाई हमेशा नहीं मिलते। हाँ मनिकाबाई, एक बात तो सुनो। हम दोनों के विषय में, विशेषतः श्रीमती रामबाई के संबंध में, लोग लुक-छिपकर न-जाने क्या-क्या बातें किया करते हैं। इससे, वैसी बातों का अंत करने के लिये, हम भी इन्हीं पंडितजी से, इसी सुमुहूर्त पर, अपना विवाह कराए लेते हैं ऐसा हो जाने पर लोगों को गड़बड़ बातें बकने के लिये जगह न रह जायगी।

मनिकाबाई—इसके लिये मैं हृदय से सलाह देती

हूँ—मैं सब तरह से राज़ी हूँ। ईश्वर तुम्हें मार्कंडेय के बराबर दीर्घायु करें।

रावबहादुर—(नेपथ्य में, आशाराम से) वाहजी वाह! इस भोली-भाली औरत को अपने जाल में फाँसने के लिये तुमने बहुत अच्छा उपाय सोचा। सचमुच तुमने मौक़ा देखकर काम किया है—समय परखने में तुम बड़े चतुर हो।

आशाराम—रावबहादुर साहब, विना ऐसा किए यह काम निर्विघ्न हो भी तो नहीं सकता था। बस, इसे किसी प्रकार समझा दिया कि काम सिद्ध है।

रावबहादुर—अब यहाँ पर मैं ही उम्र में सबसे बड़ा हूँ। अतएव इस तरुण युगलजोड़ी का मैं ही हाथ से हाथ मिलाता हूँ।

(विष्णुलाल और मालती तथा आशाराम और रामबाई को परस्पर एक दूसरे का हाथ पकड़ाकर गिरधारीसिंह आशीर्वाद देता और कुँअर के आगे प्रेम से सिर झुकाता है। गिरधारीसिंह की पीठ की आड़ में मनिकाबाई दमड़ी से कान में कुछ कहती और भगुवा के हाथ उसे सौंपती है। दमड़ी भी दाढ़ीवाले भगुवा की ओर देखकर कुछ घबराई हुई-सी हँसती है)

भगुवा—(हँसकर दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ) रानी साहबा, आपने यह लड़की क्या दी, बारे-एहसान से मेरा हमेशा के वास्ते सर झुका दिया।

रावबहादुर—(नेपथ्य में) मालती की भाँति यदि मैं

अपनी इस स्त्री की भी कुछ व्यवस्था कर सकूँ, तो बड़ा आनंद हो।

मनिकाबाई—(शीघ्रता से) चलिए, सब लोग भीतर चलिए। भोजन ठंडा हो रहा है।

[सब जाते हैं

चौथा दृश्य

स्थान— रावबहादुर की लाइब्रेरी

[दौलत अकेला]

दौलत—(स्वगत) अबै तक तौ हमका आसरा दीन्हे रहीं, मुदा अखीरी बेरियाँ बुआ हमका धोखा दइ दीन्हेनि। अब दमड़ी हमरे हाथ ते निकरि गै। अच्छा, (मूछों पर ताव देता है) सारे भगुवा, हम ही अकेले नहीं ठगाय गयन, तो हूँ अपने करम का रोव। कइसे दमड़ी के पाछे-पाछे घूमा करत रहै, मुदा अब वहिं धोखा दीन की नाहीं! वहु सार बोकरा-कइसि डाढ़ी लीन्हे को जानै उन राजा के साथ कहाँ ते आय पहुँचा! दमड़िउ ससुरी का बूढ़ नीक लाग। कुछू समुझि नहीं परत। (सोचने लगता है) सारे भगुवा, अब तौ हाथ ते चिरैया निकरि गै! मुदा दौलति, तोरे बरे तौ नीकै भा! दमड़ी तोरे लायक ना रहै। काहे ते कि त्वैं तौ रावबहादुर क्यार नातेदार आही, औ वह एकु नौकरनी आय। जो तुइ कबौं वहिके साथ बियाहु

कइ लेती, तौ दुनिया तोहिंका थूकति! यासव, फूफा यही कइती चले आवति हैं। चलौ, अब हियाँ ते खसकि चली।

[जाता है

(दूसरी ओर से रावबहादुर का प्रवेश)

रावबहादुर—(स्वगत) अंत को मेरा विचार सफल हुआ—किसी प्रकार मेरी टेक रह गई। कुँअर ज़बरसिंह-जी के साथ मालती का विवाह निर्विघ्न हो गया। अब मैं शिवपुर के महाराज का समधी हूँ। अब मेरी जोड़ का बड़ा आदमी इस शहर में तो कोई भी नहीं रहा। किंतु इस गड़बड़ में एक बात बिगड़ गई। आशाराम ने धूम-धाम में रामबाई के साथ अपना विवाह करा लिया। मैं खड़ा-खड़ा देखता रह गया। मेरे हाथ कुछ न लगा। यह सब उसी आशाराम का फैलाया हुआ जाल था। अच्छा, (मूछों पर ताव देता है) अब समझ लूँगा बच्चा! मगर इस दुःख में भी यह सोचकर आनंद होता है कि दामाद मुझे बहुत ही लायक़ मिला। मालती को बहुत ही अच्छा वर मिला। उसका जन्म सुधर गया। मैंने अभी दहेज़ वग़ैरह कुछ नहीं दिया है, इससे वह बूढ़े दीवान वग़ैरह मुसाहब नाक-भौं सिकोड़ रहे हैं। सिकोड़ते रहें, कुछ पर्वा नहीं। बिदा करते समय मैं ये २५ हज़ार रुपए देकर दामाद और उसके मुसाहबों को बतला दूँगा कि मेरा घराना कितना धनी है। (रामबाई और आशाराम प्रवेश करते

हैं। उन्हें देखकर) आओ आशारामजी, पधारो। तुम तो सचमुच ही चतुर्भुज बन बैठे। खैर, जाने दो; मेरी मालती का विवाह राजपरिवार में हो गया, इसका यश तुम्हीं को है। यद्यपि तुम्हारे इस उपकार का बदला चुकाया नहीं जा सकता, तथापि इस आनंद के अवसर पर मैं वे दस हज़ार रुपए तुमको पुरस्कार में देता हूँ, जो मुझे तुमसे मिलने हैं।

आशाराम—रावबहादुर साहब, हम दोनों आपकी इस उदारता के लिये हृदय से धन्यवाद देते हैं। क्यों न हो, रईसों के सुपुत्र ऐसे ही होते हैं। हाँ, मैं यह कहने के लिये आपके पास पहले आया हूँ कि मालती और कुँअर साहब आपसे बिदा माँगने आ रहे हैं।

(विष्णुलाल अपनी मामूली पोशाक पहने मालती के साथ आता है। पीछे-पीछे भगुवा और दमड़ी भी हैं। उन्हें देखकर रावबहादुर चकित और क्रुद्ध होता है। दूसरी ओर से मनिकाबाई आती है)

रावबहादुर—(क्रोध से) अरे! मैं यह क्या देख रहा हूँ! मुझे भ्रम तो नहीं हो गया। वह कुँअर साहब क्या हुए! दीवानजी कहाँ चले गए! इस भिखारी विष्णुलाल का यहाँ क्या काम है! अरे दगा हुई! धोका हुआ! ठहरो, नालिश करके तुम्हें इस धोखेबाज़ी का मज़ा चखाता हूँ! आज मुझसे काम पड़ा है! तुमने आज तक राव गिरिधारीसिंह बहादुर को नहीं पहचाना।

मनिकाबाई—(आगे आकर) मैं तो राज़ी ही न होती

थी। अब गुस्सा करने से फेरे तो उलट ही नहीं सकते। इसलिये क्रोध को दूर करो। ग़म खाओ। उस समय तुम्हीं हठ कर रहे थे। मेरी एक भी नहीं चली। अब नाहक़ बक-झक करने से क्या फ़ायदा?

रावबहादुर—(क्रोध से) हाँ, समझा, तुम्हारे इतने बड़े जंजाल का मतलब अब मेरी समझ में आया। भिखारियो, तुमने कपट से मुझको अपने जाल में फाँस लिया, इसलिये अब अपनी करतूत का फल भोगो। (दानपत्र को फाड़ता है) दहेज़ के बदले यह २५ हज़ार रुपए का दानपत्र लिखवा लिया था, सो अब वे रुपए नहीं मिलने के! अच्छा ही हुआ, जो समय पर मेरी आँखें खुल गईं। अब यहाँ से तुम्हें फूटी कौड़ी भी नहीं मिल सकती।

आशाराम—रावबहादुर साहब, आप नाहक़ गुस्सा कर रहे हैं। बीती हुई बातें भूलकर समय को देखिए, और वर-कन्या की शुभ-कामना कीजिए। यह समय बार-बार नहीं मिलता। अगर आप दामाद को दहेज़ न देना चाहें, तो कुछ हर्ज नहीं। आपने अभी जो रुपए मुझे इनाम में छोड़ दिए हैं, उन्हें मैं दहेज़ के तौर पर मालती को देता हूँ।

मनिकाबाई—इसी से तो मैं मंज़ूर नहीं करती थी। इतनी जल्दी और आग्रह से तो विवाह किया, और अब ये ढंग दिखलाने लगे!

(तार का लिफ़ाफ़ा लिए कान्हसिंह आता है)

कान्हसिंह—(आशाराम से) आपके नाम का तार आया है।

आशाराम—(लिफ़ाफ़ा खोलकर पढ़ता है) कृपा कर मुझे पकड़ लो। अजी, अच्छी तरह पकड़ो! (नाचता है, रावबहादुर भौचक्का-सा होकर देखता है) अब मैं हँसूँ, या रोऊँ! हुश, अब मुझे हर्षोन्माद हुए बिना नहीं रहता। अजी, अच्छी तरह पकड़ो।

रामबाई—आख़िर सुनूँ तो सही, इस तार में ऐसा क्या लिखा है।

विष्णुलाल—(आशाराम का हाथ थामकर) अरे, यह क्या करते हो आशाराम! दिमाग़ दुरुस्त है न—तुम्हें हो क्या गया है?

आशाराम—धत्तेरे की, तुम अब तक ख़ाक नहीं समझे! मेरे मक्खीचूस काका साहब परलोकवासी हो गए। नैनीताल के वकील रामकर्ण पचोली ने मुझे तार के द्वारा सूचना दी है कि "अपने काका नेतराम की सब प्रकार की संपत्ति के वारिस तुम्हीं हो।" जिस काका ने अपने जीतेजी मुझे एक कौड़ी भी न दी, उसी ने लाख-दो लाख की नहीं, बल्कि पूरे सत्ताईस लाख की संपत्ति का मुझे वारिस बनाया। मैं इसे उनकी कंजूसी समझूँ, या उदारता? इसी प्रकार, उनके मरने का समाचार पाकर मैं रोऊँ, या हँसूँ? तुम्हीं इसका निर्णय करो। अरे भाई, सत्ताईस लाख

रुपए ! रावबहादुर गिरधारीसिंहजी, आपके ध्यान में आया ? सत्ताईस लाख रुपए ! ओफ्, पचीस लाख और दो लाख ! (उँगलियों पर गिनता है) अब इस इतनी बड़ी रक़म को मुझे याद कैसे रहेगी ! वह मेरी नोटबुक क्या हुई ? उसी में इसे भी लिख लूँ, ताकि पीछे से भूल न जाऊँ । मेरी नोट-बुक, अरी नोटबुक, तू कहाँ चली गई ? (पाकेट टटोलता है) अब तहसीली के सिपाही, कुर्की करनेवाले मुलाज़िम, धोबी, सेठ और नाई वग़ैरह से कहो कि अगर कुछ हिम्मत हो, तो आशाराम के आगे आओ । मैं इतनी बड़ी संपत्ति लेकर करूँगा ही क्या ? और इतने रुपए ख़तम ही कब तक होंगे ? हुश, मैं तो कुछ भी सोच-समझ नहीं सकता। (दोनों हाथों से ज़ोर से खोपड़ी पकड़ता है)

रामबाई—तो इसके लिये आप इतनी चिंता क्यों कर रहे हैं ! इसके लिये मैं सीधा-सा उपाय बताए देती हूँ । इस-में से आधी रक़म अपने परम मित्र विष्णुलालजी के हिस्से में दे दीजिए, और ब्याज की रक़म इन विश्वासी भग्गूलाल-जी को इनाम में दे दीजिए । बस, मामला तय है ।

आशाराम—(आनंद से) ओहो, योग्य समय पर योग्य व्यक्ति ने मुझे बहुत ही योग्य सम्मति दी । बस, अब मैं ऐसा ही करूँगा । मैं अपनी प्रिया के वचन को कदापि मिथ्या न होने दूँगा । सत्ताईस लाख रुपए ! ओफ्—

(पलटू तार का दूसरा लिफ़ाफ़ा लेकर आता है, उसे देखकर आश्चर्य से)

अरे ! यह किसका तार है ?

पलटू—(सिर झुकाकर बंदगी करता है) यह जमाई बाबू के नाम का तार है । (विष्णुलाल को देता है । वह लिफ़ाफ़ा खोलकर तार पढ़ता और आनंदपूर्वक आशाराम को देकर मालती के कान में कुछ कहता है)

आशाराम—(तार पढ़कर, हर्ष से) वाहवा, आज का दिन बड़ा विचित्र है ! यह दूसरा चमत्कार है ! रावबहादुर साहब, आपके दामाद ने बुँदेलखंड-डिवीज़न में अकाल के समय प्रजा की सहायता करके अपूर्व उदारता दिखाई थी। आज उसका फल मिल गया। कान खोलकर सुनिए। इस काम से प्रसन्न होकर सरकार ने आपके दामाद को राय साहब का ख़िताब दिया है। दिल्ली से इनके एक मित्र ने तार द्वारा इसी बात के लिये बधाई दी है । (विष्णुलाल से) राय साहब विष्णुलालजी, आपको यह सम्मानित पदवी मिलने से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, और इसके लिये हृदय से आपका अभिनंदन करता हूँ ।

विष्णुलाल—भाई, तुम तो मेरा अभिनंदन करते हो, पर यह तो वह जाल है, जिसमें फँसने के लिये पहले पास की पूँजी ख़र्च करनी पड़ती है, और फिर भीतर जाने के लिये सिर इतना झुकाना पड़ता है कि कमर दुखने लगती है। इस बंधन में तो न फँसने में ही आनंद है ।

आशाराम—तुम्हारी बुद्धि भी विलक्षण है । यह तो सोने

का पिंजड़ा है। भीतर जाते ही ऐसे चहकोगे, जैसे मैना। यह बंधन भी बड़े भाग्य से मिलता है।

रावबहादुर—आपका कहना सच है। फिर बंधन है कहाँ नहीं। यह संसार ही बंधन है। शास्त्रीजी नहीं हैं; नहीं तो वह शास्त्र का प्रमाण भी देते।

विष्णुलाल—भाई, अभी मुझे क्षमा करो। पहले संसार के बंधन से ही उद्धार हो जाऊँ, फिर दूसरे बंधन में पड़ने की चेष्टा करूँगा।

आशाराम—(मालती की ओर देखकर) पर इस मृणाल-बंधन से तो उद्धार की आशा कभी मत करना।

(सब हँसते हैं)

भगुवा—(आनंद से नाचता है) हमारि मालिक अइसि लायक हैं कि रायसाहब का, बरुकु उइ राजा बनाय दीन जायँ तहूँ नीकि लगिहैं! (हँसता है)

रावबहादुर—(खुशी से विष्णुलाल को गले से लगाकर और मनिकाबाई की ओर देखकर) क्यों, आखिर मेरी मालती को मेरी ही भाँति उपाधिधारी वर मिला कि नहीं! कहावत ही है कि "शक्करवाले को शक्कर और मूँजी को टक्कर।" विष्णुलाल और आशाराम, तुम्हें कितना आनंद हुआ, सो मैं नहीं जानता, किंतु मेरी खुशी का आज ठिकाना नहीं है।

मालती—(नम्रता से) आप-जैसे भोले-भाले पुरुष से हम

लोगों ने थोड़ा-सा छल-कपट का व्यवहार किया, इसके लिये क्षमा करिएगा। मैं बहुत लज्जित हूँ।

रावबहादुर—बेटी, जो हुआ, सो अच्छा ही हुआ। "बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेय।" इसके लिये मैं किसी को दोष नहीं देता; किंतु इसमें संदेह नहीं कि तुम्हारे इस प्रपंच से मेरी आँख खुल गई। सच्चे बड़प्पन का उपाधियों से कोई सरोकार नहीं। बड़प्पन या गौरव तो मन की उदारता और भले कामों पर निर्भर है।

[यवनिका-पतन]

इति

गंगा-पुस्तकमाला

हमारे यहाँ से इस नाम की एक ग्रंथमाला निकल रही है। हिंदी-संसार के दिग्गज विद्वानों तथा सुप्रसिद्ध समालोचकों ने इसकी खूब प्रशंसा की है। भाषा, भाव, संशोधन, संपादन, टाइप, काग़ज़, सुंदरता, छपाई-सफ़ाई और जिल्दबंदी आदि सभी बातों में इसकी प्रसिद्धि हो चुकी है। वर्तमान पुस्तक-मालाओं में इसका प्रचार भी सबसे अधिक है। थोड़े ही समय में इसके अधिकांश ग्रंथों के ३-३, ४-४ संस्करण हो चुके हैं। इसके स्थायी ग्राहकों को सब ग्रंथ पौने मूल्य में दिए जाते हैं। स्थायी ग्राहक बनने के लिये प्रवेश-फ़ी केवल ॥) देनी पड़ती है। माला की प्रकाशित पुस्तकों में से कुछ उत्कृष्ट पुस्तकें ये हैं—

देव और बिहारी—पं० कृष्णबिहारी मिश्र बी०ए० एल्-एल्-बी। श्रृंगार-रस के श्रेष्ठ कवि देव और बिहारी की समालोचना, तुलनात्मक रूप से, इस ग्रंथ में की गई है। जो लोग व्रजभाषा-काव्य की सर्वोत्कृष्टता के क़ायल नहीं, वे यदि इसे पढ़ें, तो उनकी आँखें खुल जायँ और उनके हृदय में व्रजभाषा की महत्ता बैठ जाय। मूल्य १॥=)

प्रायश्चित्त-प्रहसन—बँगला के इसी नाम के प्रहसन के आधार पर इसे पं० रूपनारायणजी पांडेय ने लिखा है। बड़ा ही हास्य-रस-पूर्ण प्रहसन है—पढ़कर हँसते-हँसते पेट में बल पड़ने लगेंगे। देशी होकर भी विदेशी चाल चलनेवालों का इसमें खूब ही ख़ासा ख़ाका खींचा गया है। मूल्य ।)

मूर्ख-मंडली—बँगला के सर्वश्रेष्ठ नाटककार श्रीयुत द्विजेंद्रलाल

राय एम्० ए० के सुप्रसिद्ध प्रहसन "ब्यहस्पर्श" के आधार पर, हिंदी-रंग-मंच पर खेले जाने के योग्य बनाने के अभिप्राय से बहुत कुछ फेर-फार करके माधुरी-संपादक पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न ने इसे लिखा है। इसे पढ़कर हँसते-हँसते आप लोट-पोट हो जाइएगा। मूल्य ॥ सजिल्द १)

आत्मार्पण—एक ऐतिहासिक घटना के आधार पर सुकवि 'रसिकेंद्र'-रचित सुंदर खंड-काव्य। कविता बहुत ही ओजस्विनी, भावपूर्ण और हृदयग्राही है। इसका कुछ अंश 'सरस्वती' में निकल चुका था। मूल्य ।)

पत्रांजलि—बँगला 'स्वामी-स्त्रीर-पत्र' का पंडित कात्यायनीदत्त त्रिवेदी द्वारा हिंदी-रूपांतर। हमारी राय है कि प्रत्येक पढ़ी-लिखी नव-विवाहिता स्त्री इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें, और इसके अमृतमय उपदेशों से लाभ उठावें। मूल्य ॥)

मंजरी—अनुवादकर्ता हैं हिंदी के कवि-श्रेष्ठ पं० रूपनारायणजी पांडेय। सुप्रसिद्ध डॉक्टर सर रवींद्रनाथ ठाकुर आदि गल्प-लेखकों की श्रेष्ठ, सरस और चमत्कार-पूर्ण गल्पों का गुच्छा। सभी गल्पें बहुत ही उच्च कोटि की हैं। मूल्य १≡)

केशवचंद्र सेन—हिंदी के सुलेखक "एक भारतीय हृदय" द्वारा लिखित। बंगाल के सुप्रसिद्ध समाज-सुधारक, ब्राह्म-धर्म के धुरंधर प्रचारक केशव बाबू की जीवनी। पढ़ने में उपन्यास का-ऐसा मज़ा आता है। मूल्य १≡)

बंकिमचंद्र चटर्जी—पं० रूपनारायणजी पांडेय ने अनेक पुस्तकों और पत्रों से सामग्री इकट्ठा करके इस—भारत के सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक, साहित्य-सम्राट् स्वर्गीय बंकिम बाबू के जीवन-चरित को लिखा है। हिंदी में इस समय इसके मुक़ाबले के बहुत कम जीवन-चरित निकलेंगे। मूल्य १≡)

पूर्व भारत—सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबंधु-लिखित। यह एक मौलिक नाटक है। इसमें पांडवों और कौरवों के झगड़े के आरंभ से लेकर पांडवों के अज्ञात-वास के अंत तक की कथा है। यह नाटक पढ़ने से महाभारत के उस युग का दृश्य आँखों के आगे उपस्थित हो जाता है। मूल्य ॥ॐ), सजिल्द का १।)

इँगलैंड का इतिहास (प्रथम भाग)—इसके लेखक श्रीयुत प्राणनाथ विद्यालंकार एक सुप्रसिद्ध लेखक हैं। अनेक पुस्तकों की सहायता से विस्तार-पूर्वक यह इतिहास लिखा गया है। ऐतिहासिक ज्ञान के साथ ही उपन्यास पढ़ने का मज़ा आता है। मूल्य २), सजिल्द २॥)

नंदन-निकुंज—हिंदी के होनहार लेखक श्रीयुत चंडीप्रसादजी बी॰ए॰"हृदयेश"-लिखित यह ६ मौलिक, उत्कृष्ट, हृदय-ग्राही, सरस कहानियों का संग्रह है। पुस्तक एक बार उठाकर आदि से अंत तक पढ़े बिना छोड़ने को जी नहीं चाहता। मूल्य १।), जिल्ददार १॥ॐ)

द्विजेंद्रलाल राय—सुप्रसिद्ध नाट्यकार स्वर्गीय डी॰ एल्॰ राय एम्॰ ए॰ को कौन नहीं जानता? उनके नाटकों के हिंदी-अनुवाद बहुत ही लोक-प्रिय हुए हैं। उन्हीं का यह संक्षिप्त, किंतु सर्वांग-पूर्ण, जीवन-चरित है। मूल्य ।)

सम्राट् चंद्रगुप्त—इस पुस्तक के लेखक लक्ष्मण-संपादक पं॰ बालमुकुंद वाजपेयी हैं। भारत के प्रथम ऐतिहासिक सम्राट् की यह संक्षिप्त, किंतु सर्वांग-पूर्ण जीवनी बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। यह पुस्तक इतिहास-प्रेमियों के पढ़ने की चीज़ है। मूल्य ।)

बहता हुआ फूल—अनुवादक, पं॰ रूपनारायणजी पांडेय। श्रीयुत चारुचंद्र वंद्योपाध्याय के "स्रोतेर फूल" नाम के श्रेष्ठ बँगला-उपन्यास का यह हिंदी-अनुवाद है। चरित्र-चित्रण जिस सुंदरता के साथ किया गया है, उसे देखकर आप मुग्ध हुए बिना नहीं रह

सकेंगे । उपन्यास इतना रोचक और शिक्षाप्रद है कि एक बार हाथ में लेने पर पुनः समाप्त किए बिना छोड़ने को जी नहीं चाहता । लगभग ५०० पृष्ठ के बड़े पोथे का मूल्य केवल २), सुनहरी रेशमी जिल्द का २॥)

भारत की विदुषी नारियाँ—स्त्रियों के कोमल हृदय पर सती तथा पतिव्रता नारियों के जीवन-चरित्र पढ़ने से जो प्रभाव पड़ सकता है, वह अन्य पुस्तकों से नहीं हो सकता । इसमें वैदिक युग से लेकर वर्तमान युग तक की उर्वशी, मैत्रेयी, गार्गी, देवहूति, मंदालसा, आत्रेयी, लीलावती, विद्या, विदुला, मीराबाई आदि-आदि कोई ५० उन पतिव्रता नारियों के जीवन-चरित्र लिखे गए हैं, जो आजकल देवी-स्वरूप मानी जाती हैं और जिनका परिचय पाकर स्त्रियाँ अपना जातीय गौरव प्राप्त कर सकती हैं । मूल्य ।।)

भारत-गीत—लेखक, कवि-सम्राट् पं० श्रीधर पाठक । पाठकजी हिंदी-कवियों के आचार्य माने जाते हैं । आपने समय-समय पर देश-संबंधी जो उपयोगी और उत्तम कविताएँ लिखीं और पत्रों में प्रकाशित कराई हैं, उन्हीं का यह नयनाभिराम बड़ा संग्रह है । मूल्य ।।≈), सजिल्द १)

उद्यान—लेखक, पं० शंकरराव जोशी एग्रीकल्चर-आफ़िसर । पुस्तक में फल-फूल के वृक्षों, बेलों और बहारदार घासों के लगाने की विस्तृत विधि लिखी गई है । खाद, पेबंद, क़लम, बीज, सिंचाई, बाग़ की सजावट आदि विषय सरल भाषा में इस खूबी के साथ समझाए गए हैं कि साधारण मनुष्य भी बिना किसी माली की सहायता के बाग़बानी के सब काम कर सकता है । पृष्ठ-संख्या २०४ और चित्र-संख्या २० पर मूल्य सिर्फ़ ।।।≈), सजिल्द १)

भूकंप—प्रणेता बा० रामचंद्र वर्मा । भूकंप-संबंधी अनेक प्रश्नों के उत्तर बहुत ही मनोरंजक, कौतूहल-जनक, सीधे, सरल और

सुस्पष्ट ढंग से इस सचित्र पुस्तक में संग्रह किए गए हैं। पढ़ते में तिलस्मी उपन्यास का-ऐसा मज़ा आता है। मूल्य १।॥), सादी १।)

प्रेम-प्रसून—लेखक श्रीयुत प्रेमचंदजी बी० ए०। इनके विषय में विशेष लिखना व्यर्थ है। थोड़े ही समय में इन्होंने हिंदी-संसार में अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली है। इनकी रचना जैसी स्वाभाविक, रोचक और भावपूर्ण होती है, वैसी ही शिक्षा-प्रद, उत्साह-वर्धक तथा गंभीर भी। प्रेम-प्रसून इन्हीं की एक-से-एक बढ़कर अनूठी कहानियों का संग्रह है। अब तक इनके जितने गल्प-संग्रह छपे हैं, उनमें यह संग्रह सब से बढ़कर है। मूल्य १।)

रावबहादुर—आपके हाथ ही में है।

नारी-उपदेश—लेखक स्व० गिरिजाकुमार घोष। इस पुस्तक में नारियों के जानने-योग्य बीसों उपदेश-प्रद विषयों का वर्णन बड़ी खूबी के साथ सरल भाषा में किया गया है। इस पुस्तक के पढ़ने से आपके घर की नारियाँ लक्ष्मी, और घर स्वर्ग बन जायगा। मूल्य ॥)

भगिनी-भूषण—लेखक स्व० बाबू गोपालनारायण सेन सिंह। लड़कियों के लिये यह पुस्तक अमूल्य है। इसमें कुमुद और किरण, शारदा और उसकी माँ, बड़ों की आज्ञा, लीला और सरोज—ये रोचक चार मौलिक कहानियाँ दी हुई हैं। इस पुस्तक के पाठ से कन्याओं को अमूल्य शिक्षाएँ मिलेंगी। मूल्य ≈)

अयोध्यासिंहजी उपाध्याय—उपाध्यायजी के पवित्र जीवन का विस्तृत वर्णन पढ़ना हो तो आप इस सुलिखित जीवन-चरित को अवश्य पढ़िए। इसमें भिन्न-भिन्न अवस्था के दो चित्र भी हैं। मूल्य ।)

चित्रशाला—हिंदी-जगत् से जिसका कुछ भी परिचय है,

वह कहानियों के श्रेष्ठ लेखक पं० विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक को जानता होगा। आपकी कहानियाँ पढ़ते-पढ़ते पाठक कभी करुणा से रोने लगते हैं और कभी विनोद की गुदगुदी से हँसने लगते हैं। पूरा-पूरा आनंद पढ़ने से ही आ सकता है। मूल्य

बाहर की पुस्तकें

हमारे यहाँ हिंदुस्थान-भर की हिंदी-पुस्तकें मिलती हैं। उन पर स्थायी ग्राहकों को ⌐) रुपया कमीशन मिलता है। जो पुस्तकें आवश्यक हों, उन्हें मँगाने की कृपा कीजिए। बड़ा सूचीपत्र मुफ़्त मँगाकर देखिए।

हिंदुस्थान-भर की हिंदी-पुस्तकों के मिलने का पता—

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२६-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ